सिद्धयोग

अगस्त १९९०

संस्थापक संपादक
योगेश्वर अनन्तश्री
न्द्र मोहनजी महाराज

वर्ष
२३

अंक
५

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सँवाई, आगरा

इस अंक मे पढ़िये—

★ तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (प्रार्थना) ... १
★ ज्योतिषां ज्योतिरेक —सम्पादकीय ... २
★ जय हो, जय हो, जय जय हो! (कविता) ... ५
—श्री 'दिव्य'
★ यम-नियम का पालन ही सच्ची श्रद्धांजलि ... ६
—श्री श्यामलाल खन्ना "श्याम"
★ मेरे आराध्यदेव-श्री सद्गुरुदेव ... ७
—ब्र० रामलाल शर्मा
★ मैं कौन हूँ, किस कार्य से आया? ... ६
—श्री विष्णुप्रसाद व्यास
★ श्रेय और प्रेय —काका कालेलकर ... १३
★ ध्यानदीप —श्री शिवानन्द ... १७
★ पग चालन - श्री गुरुदेवजी द्वारा ... २१
★ श्रद्धांजलि —श्री विष्णुप्रसाद व्यास ... २५
★ दिव्यावतार श्री गुरुदेवजी ... २६
—श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री
★ योग-धर्म का व्यापक प्रचार ... ३२
—वैद्य रामधन शर्मा शास्त्री
★ सर्वोत्तम साधना —उपनिषद् बोध ... ३४
★ यज्ञ क्या —श्री देवनारायण भारद्वाज ... ३५
★ रमता जोगी बहता पानी —दिव्य ... ३८
★ वे सिद्धपीठ बना गये सवाई-आश्रम को ... ४१
—श्री सुखदेव अरोरा
★ श्री सद्गुरुदेव के चरणों में ... ४३
—ब्रह्मचारी धीरेन्द्रस्वरूप
★ हमारे गुरुदेव अवतारी पुरुष थे ... ४५
★ यदि पल भर को तुम आ जाते! (कविता) ... ४६
—श्री नन्दकिशोर "श्याम
★ गोवंश का महत्व —श्री दर्शनानन्द ... ४७

पूज्य श्री गुरुदेवजी की अन्तिम झांकी का रंगीन चित्र इस अंक में ब्लाक समय पर तैयार न हो पाने के कारण नहीं दिया जा सका है। अब इसे किसी आगामी अंक में दिया जायेगा। —सम्पादक

वार्षिक मूल्य ४० रुपया। इस अंक का ५ रुपया।

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा
सवाई
आगरा

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

अगस्त
१९९०

श्रद्धांजलि-अंक

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र
श्री सिगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा।

वर्ष २३ अङ्क ५ | अगस्त १९९०

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात्

जिस मन में (ऋचः) ऋचाएँ (यस्मिन्) और जिसमें (साम) साम (यजूंषि) और यजुर्मन्त्र (प्रतिष्ठिता) स्थित है। (इव) जैसे कि (अराः) अरे (रथनाभौ) रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में लगे होते हैं, तथा (यस्मिन्) जिस मन में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सब पदार्थों सम्बन्धी ज्ञान, (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान संयुक्त है, (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी, अर्थात् वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचाररूपी संकल्प वाला (अस्तु) है।

सम्पादकीय :

ज्योतिषां ज्योतिरेकं

卐

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं,
पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय,
पूर्णमेवावशिष्यते ॥

पूज्य गुरुदेव !

आप जैसे पूर्ण पुरुष यहाँ पूर्णता के जिस वातावरण को सृजन करके गये हैं वह यथावत् है और आगे भी यथावत् बना रहेगा। किन्तु हम सबको तो आपके अभाव में सब ओर 'शून्य ही शून्य' दृष्टिगोचर हो रहा है। यद्यपि शून्य पूर्णता का परिचायक हो, पर यह समाधान हम जैसे साधारण जनों की समझ में नहीं आ रहा है !

—सं० सं०

यह समस्त सृष्टि जिन नियमों के आधार पर संचालित होती रहती है, उन्हें वैदिक भाषा में ऋत कहा जाता है। ये ऋत अपरिवर्तनीय होते हैं, रंचमात्र भी इनमें कभी किसी भी देश और काल में कोई अन्तर नहीं आता। चेतन अथवा जड़रूप में जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में हमें दृष्टिगोचर होता है अथवा जो कुछ भी अनुमान प्रमाण द्वारा हमारे अनुभव में प्रतिष्ठित हो पाता है, वह सभी इन ऋतों यानी ब्रह्माण्डीय नियमों के अन्तर्गत ही होता रहता है। पदार्थों का सृजन और विनाश, प्राणियों का जन्म और मरण सभी सहज भाव से आने जाने वाले ऐसे द्वन्द्व हैं, जिनमें न कोई विराम या व्यवधान अब तक हुआ है न आगे होना संभव होगा। इसीलिए भगवती श्रुति का कथन है—

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।

अर्थात्—'मनुष्यो ! देखो देवता के इस काव्य को जो न तो कभी मरता है न पुराना पड़ता है, सदा सर्वदा प्रभु का यह काव्य यानी सृष्टि-रचना-कौशल, सनातन अर्थात् नित्य नूतन ही बना रहता है। आप अपनी वर्तमान सृष्टि पर ही दृष्टि डालिये। इसको अस्तित्व में आये १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४८ हजार (१,९७,२९,४८०००) वर्ष से कुछ अधिक का काल व्यतीत हो चुका है; लेकिन इसमें नित्य उदित होने वाले सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र मण्डल को देखने पर न तो इनमें कोई जराजीर्णता नजर आती है और न कहीं कोई पुरानापन ही दिखलाई पड़ता है। उल्टा इनके उदय से नित्य आपमें नई स्फूर्ति और नये उत्साह का संचरण होता है। पतझड़, वन-वैभव को प्रति वर्ष समेट कर उसका अन्त कर देता है, किन्तु वर्षा और वसन्त ऋतुएं धरती में ही समा गये उन सभी बीजों को जो वन-वैभव के कारण थे फिर नई वनश्री के रूप में धरती के ऊपरी आंचल पर उजागर कर उसे शस्यश्यामला का रूप प्रदान कर देती हैं। हम और आप सभी इसके सौन्दर्य को देखकर उत्फुल्ल हो जाते हैं। कभी नहीं कहते कि यह पुराने बीजों का रूपान्तर होने से त्याज्य है।

इसीलिए श्रुति का यह कथन निर्विवाद अक्षरशः सत्य ही है कि यहाँ सब कुछ नित्य नूतन ही बना रहता है। मृत्यु और

जीर्णता जैसे शब्द सृष्टि की पाठशाला में रूपान्तरण के अलावा अपना कोई अलग अर्थ ही नहीं रखते। तभी तो तो पुरुष को क्षरणशील पांच-भौतिक देह के साथ व्यक्त होने पर भी 'अमृत पुत्र' कहकर श्रुतियों ने उस अपने स्वरूप को न भूल जाने का परामर्श दिया है। सर्व साधारण पुरुष अपने कर्मानुसार ही फल भोग के लिए यहाँ जन्म लेकर भव-बंधन में पड़ा करते हैं। इनमें जो अपने 'अमृत स्वरूप' को जानकर भव-बन्धन काटकर मुक्ति पद पा जाने की चेष्टा करते हैं, उनकी संख्या नगण्य सी ही रहती है। अपरिमित संख्या तो ऐसे ही जीवों की होती है, जो मानव देह पाने का सुयोग पाकर भी बिना सही मार्ग-दर्शन के भव की क्लेशमूलक अटवी से निकलने की शक्ति ही नहीं जुटा पाते। इन पाप-ताप से पीड़ित असंख्य मनुष्यों को सही दिशा-बोध देने और उन्हें निरापद परम कल्याणकारी मोक्षपद की प्राप्ति कराने के लिए मुक्तात्माओं को समय-समय पर ऋषियों, मुनियों, युग-पुरुषों, सिद्ध पुरुषों योगियों और अवतारी पुरुषों को धराधाम पर भेजने की कृपा किया करते हैं। ये सभी विशिष्ट पुरुष, अपनी निरन्तर की साधना और तपस्या द्वारा प्रभु की भक्ति सामर्थ्य से सम्पन्न होते हैं, ये सभी नित्य मुक्तात्मायें होती हैं, इन्हें जन्म लेनेका अपना कोई प्रयोजन नहीं रहता। यह तो केवल बहते हुए अधार्मिक प्रवाह के जाल से बचाकर जग को सही दिशा-बोध देने के उद्देश्य से प्रभु प्रेरणा से अपना प्राकट्य किया करती है। ऐसा होते रहना भी सृष्टि के ऋतों के अन्तर्गत ही आता है। जैसाकि स्वयं जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द्रजी ने श्रीमद्भगवद्-गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य,
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य,
तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
(गीता ४/७)

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपने आराध्य भगवान श्रीराम के मनुज रूप में अवतरण के प्रसंग में भी कुछ ऐसा ही भाव प्रकट किया है। यथा

जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हिं अधम असुर अभिमानी॥
तब तब धरि प्रभु मनुज शरीरा।
मेटहिं सकल भक्त करि पीरा॥

अरूप अकाम प्रभु रूपधारी बनते हैं या नहीं, यह महा मनीषियों के विचार और चिंतनका विषय हो सकता है! किन्तु इसमें तो किसी विवाद का प्रश्न ही नहीं पैदा होता कि नित्य-शुद्ध-विमुक्त आत्मायें लोक-कल्याण के लिए अंधकार और अज्ञान के दुर्गम जगत-जंगल में भूले-भटके दुर्गति प्राप्त मानवों को सही ज्ञान-मार्ग का दिग्दर्शन कराने के लिए परम प्रभु की स्फुरणा होने पर उसके अपने ज्ञान और ऐश्वर्य-शक्ति से सम्पन्न हो, समय पर इस धरतीपर प्रकट हुआ करता है। ऐसी ही महान आत्मायें-यहाँ ऋषि, मुनि, देवता, अवतार सिद्धपुरुष, युगपुरुष महायोगी आदि कहकर पुकारे जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो फिर उस अनन्त असीम सर्वत्र व्यापक सत्ता का परिचय, कौन करा पाता? कौन उसकी कल्याणी वाणी वेद के रहस्यों को समझ पाता? जन-जनको समझा पाता। दैवी शक्ति से सम्पन्न महापुरु ही इसे भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न रूपों में आकर समझाया करते हैं। इन महान आत्माओं का आना ही भगवान का दिव्य जन्म कर्म समझा जाता है। जैसाकि भगवान कहते हैं— मेरे जन्म और कर्म दोनों ही दिव्य होते हैं, इन्हें जानने और समझने के लिए दिव्य-दृष्टि की आवश्यकता हुआ करती है।

जीवन का लक्ष्य जन्म-मरण के बन्धन से विमुक्त होकर मोक्ष-पद को प्राप्त कर लेना है। मोक्ष-पद को पा लेना ही परम पुरुषार्थ बताया गया है। अष्टांग योग की सतत् साधना एक ऐसा श्रेयस्कर मार्ग है, जिस पर चलकर साधक निश्चित रूप से इस पद को पा लेने में पूर्णत: सफल हो जाया करता है। सिद्धयोगियों का अवतरण अथवा प्राकट्य भी सर्व साधारण को इसी श्रेयस्कर योग-मार्ग का दिग्दर्शन कराने के लिए हुआ करता है, विशेषकर तब, जबकि अज्ञान और भ्रम के बादलों के घटाटोप में यह उज्ज्वलतम् मार्ग जन-साधारण की दृष्टि से ओझल हो जाया करता है। महाशक्ति सम्पन्न योगियों और सिद्धयोगियों का जन्म लेना इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए ही होता है। योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण का अवतरण भी संसार को योग-मार्ग का दिशा-बोध कराने और योगी-जीवन को जन-जन में प्रतिष्ठापन्न कराने के अभिप्राय: से ही हुआ था। इसके बाद भी सिद्धयोगियों की एक लम्बी इतिहासबद्ध श्रृंखला हमें अपने देश में देखने को मिलती है जो योग-मार्ग की प्रतिष्ठा और प्रतिपादन के लिए यहाँ नियोजित रूप में आये और अपना अभीष्ट पूराकर चले गये।

इसी कड़ी और क्रम-श्रृंखला से जुड़े हुए रहे हैं, हमारे महाप्रभु योगयोगेश्वर श्री रामलालजी महाराज और निकटतम अतीत में अभी-अभी गत जून मासके अन्तिम सप्ताह में हम सबको सहसा छोड़कर स्थूलसे व्यापक रूप में समाहित हो जाने वाले उनके अनन्य शिष्य एवं सिद्धयोग परम्पराके प्रवाहको जन-जन तक पहुँचाने के भगीरथ प्रयास मेंक्षण-क्षण रत रहने वाले, हमारे आपके परमपूज्य आराध्यदेव योगयोगेश्वर अनन्त श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज। अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार सन् १९४३ में सवाई स्थित उनके लीलाधाम सिद्धगुफा को केन्द्र बनाकर अनवरत की जाने वाली अपनी योग-साधना और कठोर तप का आश्रय लेकर इन्होंने इसे भारत में ही नहीं, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक जगत में एक ख्याति प्राप्त आदर्श योग-प्रशिक्षण केन्द्र और सर्व कामना पूर्तिकारक सिद्धपीठ के रूप में उजागर करने का सफल प्रयास किया। सारे उत्तर भारत में इस केन्द्र की बहु-संख्यक शाखायें हैं, जिनमें प्रति वर्ष योग सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए बड़े-बड़े आयोजन होते रहते हैं। श्री गुरुदेवजी प्राय: इन सभी आयोजनों में नियमित रूप से शामिल होकर अपने अनगिनती शिष्यों को कृतार्थ करते रहते थे।

प्रात: स्मरणीय श्री चन्द्रमोहनजी महाराज योग-शक्ति और योग-ऐश्वर्यों भण्डार थे, किन्तु अपनी इस विशेषताओं का प्रदर्शन का माध्यम बनाना इन्हें कभी अच्छा नहीं लगता था। इनकी जीवनचर्या में योगीजीवन की सरलता, साधुता, ऋजुता, करुणा, प्रेम और सत्यनिष्ठा सहज भाव से समायी रहती थी। विनोद-प्रियता, शालीनता हर व्यवहार में पर्याप्तरूपेण देखने को मिलती थी। दैवी सम्पदा के सभी सद्‌गुण इनके स्वाभाविक अपने अलंकरण थे। सच-मुच यह ऐसे महात्मा थे जिनके मन-वाणी और कर्म में सदा एकरूपता ही देखने को मिलती रही। इनके जीवन्त आदर्शों पर जितना भी लिखा जाय, थोड़ा ही होगा। यह सचमुच ज्ञानरश्मियों के पुंज थे, प्रभु की असंख्य आभामय ज्योति में एकमात्र थे ऐसी ज्योति थे, जिसके प्रकाशमें आने वाली पीढ़ी अपने अभीष्टको प्राप्त करके कृतार्थहो जाया करेगी बशर्ते वह अपने इन गुरुदेव के दिखाये हुए मार्ग का अनुगमन करनेका प्रयासकरे।

सिद्ध पीठ के सन्त तुम्हारी—

जय हो, जय हो, जय-जय हो !

सिद्ध-मार्ग के दिग्दर्शक तुम, उपकारक थे जन-जन के।
थे आधार निराधारों के, बल थे निर्बल, निर्धन के।।

'सद्‌गुरु' थे शतशः शिष्यों के, सज्जन, सुधी, सुधाकर थे।
व्रती-व्रनी थे, ऋषि थे, मुनि थे, प्रतिभा-पुंज प्रभाकर थे।।
नर होकर भी नारायण थे, अतिशय अगम अगोचर थे।
'मोहन' का ले नाम-रूप तुम, हुए सभी को गोचर थे।।

शिष्यों की जीवन-कलिका को, तुम जीवन-रस देते थे।
देकर प्रेम हृदय का सबको, अपने बश कर लेते थे।।
'ज्ञान-भक्ति' वैराग्य, कर्म की, तुम जीवन्त कहानी थे।
शक्तिपात के सु-प्रवाह के, निर्झर तुम लासानी थे।।

योग सूत्र सब देव ! तुम्हारी, चर्या में अभितन्त्रित थे।
गीता के उद्‌घोष तुम्हारी, वाणी में अभिमन्त्रित थे।।
'सिद्धयोग' के व्याख्याता तुम, ऋद्धि-सिद्धि के दाता थे।
'स्वयं सिद्ध' थे 'परम पुरुष' थे, ज्ञेय, ज्ञान अरु ज्ञाता थे।।

सामवेद के गान मधुरतम्, मन-भावनी प्रभाती थे।
तुम युग-द्रष्टा युग-सृष्टा, 'प्रभु रामलाल की थाती थे।।
जीवन ज्योति तुम्हारी प्रभुवर, सब वसुधा को सुखमय हो।
'सिद्धपीठ' के सन्त तुम्हारी, जय हो, जय हो, जय-जय हो।।

—'दिव्य

● श्यामलाल खन्ना "श्याम"

यम-नियम का पालन ही सच्ची श्रद्धांजलि

योगिराज स्वामी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज मेरे ज्येष्ठ गुरु-भाई थे। मैं सदा उनका गुरुवत् ही सत्कार करता था और वे भी बड़े भाई की भांति मुझ पर स्नेह और कृपा-दृष्टि रखा करते थे।

लगभग १९३४ ही में जब मैं लाहौर (पाकिस्तान) में रहता था तो ब्रह्मचारी गोपालानंद जी के पश्चात् मेरे सद्गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु रामलालजी महाराज ने योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराजको योग-साधन आश्रम लाहौर का आचार्य बनाकर भेजा। युवावस्था वाले आप योगासन सिखाया करते थे और रोगियों की चिकित्सा योग-साधनों द्वारा किया करते थे।

सद्गुरुदेव योगेश्वर रामलालजी महाराज के शरीरलीला रमानेके पश्चात् सभी आश्रमों का कार्यभार स्वामी मुलखराजजी महाराज ने सँभाला। योगिराज चन्द्रमोहनजी महाराज उन दिनों वृन्दावन और उत्तर काशी में योग की घोर साधनायें करते रहे और सवाई में आकर श्री सिद्धगुफा की सेवा में तन, मन, धन से लग गये। उनके अथक प्रयास से श्री सिद्धगुफा का विराट रूप सामने आया, जो आज लाखों गुरु-भक्तों का तीर्थ-स्थान बन चुका है।

२ नवम्बर, १९६० को योग-साधन आश्रम के प्रधान आचार्य योगिराज श्री मुलखराजजी के ज्योति-महाज्योतिमें समा जाने के पश्चात् योग-साधन आश्रम ऋषिकेश की बागडोर स्वामी चन्द्रमोहनजी ने सँभाली और उसका विस्तार किया।

योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी को मैंने १९६१ में योग-साधन आश्रम शिमला के ९वें वार्षिक उत्सव पर शिमला आमन्त्रित किया था। आप १३ दिन शिमला में योग-प्रचार करते रहे, हजारों जिज्ञासुओंने आकरलाभउठाया।

आपने पिछले तीस सालोंमें सारे भारतवर्ष में घूम-घूमकर योग का महान प्रचार किया। योगकी सिद्धियों, शक्तियों की झलक दिखाई, हजारों जिज्ञासुओं को ध्यान-समाधि का दान दिया। योग-चिकित्सा द्वारा साध्य और असाध्य रोगों का निवारण किया, आप कभी थकते नहीं थे। दिन-रात योगेश्वर महाप्रभु रामलालजी महाराज के खजाने को बांटते रहे। आपका योग-प्रचार कार्यक्रम पूरे मास चलता रहता था।

आप यम-नियम के पालन पर बहुत बल देते थे। मेरी पत्रिका दिव्य-शक्ति के जौलाई, १९६१ के अङ्क में आपका लेख 'यम-नियम' पर छपा था, उस लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं—"साधक की प्रबल इच्छा रहती है कि वह जल्दी से जल्दी समाधि को प्राप्त कर ले। वह अपने मन की धारणा के अनुसार योग के दूसरे अंग-उपांग को न समझ कर जल्दी से जल्दी ध्यान-समाधि प्राप्त करने का ही प्रयत्न करता है। किन्तु यह प्रयत्न उसका उसी प्रकार है, जैसे प्रथम व द्वितीय श्रेणीका विद्यार्थी बी० ए०, एम० ए० की योग्यता की

(शेष पृष्ठ ८ पर पढ़िए)

● ब्र० रामलाल शर्मा

मेरे आराध्यदेव-श्री सद्गुरुदेव

२९ जून की रात्रि हम सबके लिए सदा-सदा के लिए क्रूर एवं काल-रात्रि बन गई। श्री गुरुदेवजी स्थूल रूपसे सदा के लिए हमारे लिए अदृश्य हो गये। इस हृदय-विदारक समाचार ने उनके लाखों शिष्यों को दुःख एवं शोक के महासागर में डुबो दिया। सभी को लगा मानो शरीर से प्राण निकल गये हों। ऐसा स्वाभाविक ही था, क्योंकि उनके बच्चों के मन और प्राण उस समष्टि प्राण से जुड़े हुए थे। यदि गुरुदेव सूर्य हैं तो उनके बच्चे उनकी किरणें हैं। उनके अभावमें चारों ओर महा अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दे रहा है। हमारा-उनका सम्बन्ध भक्त-भगवान एवं जीव-ब्रह्म जैसा था। लीलावसान की रात्रि को अपने असंख्य बच्चों को ध्यान एवं स्वप्न में दर्शन देकर उन्होंने लीला-संवरण का आभास करा दिया। नित्याभियुक्त उनके बच्चों को ऐसा होना स्वाभाविक बात है।

श्री गुरुदेवजी अपने शिष्यों के लिए क्या-क्या थे, इसका वर्णन करना लेखनीकी शक्ति से परे है। वे हमारे लिए सच्चे पिता, बन्धु, मित्र, ईश्वर सब कुछ थे। एक बार जो उनके सम्पर्क में आ जाता था तो वह उन्हीं का होकर रह जाता। उनके स्थूल देह से न रहने के कारण जीव में जो स्वरसवाही व स्वाभाविक भय होता है वह हमें व्याप्त हो गया। गुरुदेवजी के रहते हुए हम काल-भय से भी भयभीत नहीं होते थे, क्योंकि हम जानते थे कि उनके सामने काल की गति नहीं है। यद्यपि यह भय एवं निराशा हमारे मोह-अज्ञान के कारण ही है, क्योंकि हमारे सद्गुरुदेवजी सत्यस्वरूप हैं, वे देश, काल एवं वस्तु से परिछिन्न नहीं है। "बहिरन्तश्च भूतानाम् चरमचरमेव च" की भगवद्वाणी के अनुसार गुरुदेव हमारे भीतर-बाहर सर्वत्र है। श्वास-प्रश्वास में समाहित हैं तथा मन्त्र-रूप होकर भीतर-बाहर गतिमान हैं। जब तक हमारे प्राण हैं तब तक उनका वियोग नहीं है। जब भी हम अन्तर्मुख होने की भावना रखते हैं, सर्व प्रथम हमारे सामने गुरुदेव ही होते हैं। उनका स्मरण ही हमारे लिए प्रथम एवं अन्तिम अध्यात्म-सोपान है। वे ही हमारे ध्येय एवं आराध्यदेव हैं। अध्यात्म एवं गुरुदेव एक ही वस्तु के दो नाम हैं, क्योंकि गुरुदेव अध्यात्म स्वरूप हैं। श्री गुरुदेवजी साक्षात् भगवान थे। अपने वात्सल्य एवं प्रेमसे समस्त संसारको उन्होंने वशमें कर लिया था। पूज्य गुरुदेवजी अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि जो योगी आनन्दानुगत को पार करके अस्मितानुगत में पहुँच जाता है, वह राग-द्वेषसे परे होकर अपने प्रेमसे समस्त संसार को परिप्लावित कर लेता है। यह योगीकी 'सर्व भूतस्थ मात्मानम् सर्व भूतानि चात्मनि' वाली स्थिति है। इसमें योगी सब प्राणियों को अपने भीतर तथा अपनेको सब प्राणियों के भीतर देखता है, तभी सच्चे अर्थों में वह राग-द्वेष से रहित होकर समस्त प्राणियों को अपने प्रेम-पाश में बाँध लेता है। "तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।" इस श्रुति वचनानुसार वह एकत्व

दर्शन के कारण शोक, मोह से विमुक्त हो जाता है। हिंसक से हिंसक प्राणी से गले लग जाया करते हैं। श्री गुरुदेवजी अपने बच्चों के दुःख में अत्यन्त विह्वल हो जाया करते थे। किसी भी प्राणी का दुःख उनसे देखा नहीं जाता था। किसी भी व्यक्ति का मन उन्होंने नहीं दुःखाया। जहाँ अत्यधिक वात्सल्य व प्रेम-प्रवाह प्रवाहित होता है वहाँ पर नियम-कानून नहीं चल पाते हैं। यही बात अपने गुरुदेवजी के साथ थी। वह दिव्य गुणों के आगार परम पुरुष थे। ध्यानयोगी साधक उनकी अलौकिक शक्ति को एवं योग ऐश्वर्य को उनकी कृपा से अनुभव करते हैं। अब उनके स्थूल देह त्याग से सिद्धयोग का सूर्य अस्त हो गया। शक्तिपात दीक्षा की परम्परा समाप्त प्रायः हो गई। योग के क्षेत्र में उनका अभाव विश्व कभी पूरा नहीं कर पायेगा।

हमारा सम्बन्ध सिद्ध लोक से है। हम लोगों को योग मार्ग में उत्तरोत्तर आगे ले जाने के लिए किसी न किसी रूप को अधिष्ठान मान कर आयेंगे तथा हमें योग की चरम सीमा तक पहुँचायेंगे। यह उनका संकल्प है। योगियों के लिए शरीर विसर्जन व निर्माण बहुत साधारण सी बात है। परम गुरुदेव महाप्रभु रामलालजी जब भौतिक शरीर को छोड़ने वाले थे तब गुरुदेवजी को इसका अनुभव हो गया था उन्होंने कहा था प्रभुजी! लगता है आप इस शरीर को छोड़ देंगे। श्री प्रभुजी ने कहा—बेटा! 'निराश मत हो, कोई चिंता मत करो' ऐसे शरीर त्याग व निर्माण के कार्य तो हम हजारों रोज करते हैं।' अपने गुरुदेवजी भी इसके अपवाद नहीं हैं। वे एक ही समय में अनेक शरीर धारण करके विश्व का कल्याण करने वाले हैं।

उन्होंने हम सबको पवित्र योग-मार्ग की दीक्षा देकर सिद्धयोग **मार्ग में लगाया। हम सबको** चाहिये कि **उनके द्वारा बताये गये साधनों** को करके **आत्म-कल्याण करें तथा** उनके पावन **योग सन्देश को जन-जन तथा** देश-देशान्तर में फैलायें। उनके द्वारा स्मृति के रूप में छोड़े अपने सिद्धगुफा की बागवानी को पुरुषार्थ, त्याग सेवा व प्रेम जल से अभिसिंचित करते हुये उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि दें। इसकी पवित्रता विकास एवं उत्थान के लिए सब संगठित होकर उनके आदर्शों व संकल्पों को पूरा करें। उनके द्वारा प्रज्वलित योग-दीप को श्रद्धा-सेवा त्याग एवं साधना से प्रज्वलित रखें। उनकी अलौकिक शक्ति सर्वत्र है। अपने इस सिद्धपीठ को वह स्वयं ही अपने योगालोक से आलोकित रखेंगे। अपने श्री गुरुदेवजी के पावन चरण-कमलों में हम सब अध्यात्म-परिवार के बच्चों का कोटि-कोटि प्रणाम है।

(पृष्ठ ६ का शेष)

इच्छा रखता हो। इस प्रकारके प्रयत्न कठिनता से सफल हुआ करते हैं। कदाचित् किसी सिद्ध महात्मा, सद्गुरु की कृपा से, ईश्वर की कृपा से कुछ स्थिति बन भी जाय तो साधन योगकी पहली साधना, अभ्यास और वैराग्य के बिना ऐसे साधकों का पुनः पतन होते देखा गया है। भगवान पतंजलि की आज्ञानुसार अष्टांग साधना करनेवाला व्यक्ति कभी लक्ष्य च्युत नहीं हो सकता। अष्टांगयोग की साधना में सबसे प्रथम 'यम-नियम' की साधना करनी पड़ती है।"

योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के इन शब्दों पर उनके हरएक शिष्य को ध्यान देना चाहिए। उनके चरणों में सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम यम-नियमका पालन करते हुए, गुरु, ईश्वर भक्ति में तत्पर हुए ध्यान-समाधि की ओर बढ़ें। उनका मुझे आखिरी आदेश था—"लला! खूब प्रचार करो" और मैं उसी आदेश का पालन करने में यत्नशील हूँ। ××

मैं कौन हूँ, किस कार्य से आया ?

● श्री विष्णुप्रसाद व्यास

आम मनुष्य को यह ज्ञान ही नहीं कि उसकी अपनी पूँजी, अपना धन और अपनी वस्तु वास्तव में क्या है ? जब तक मनुष्य को इस बात का ज्ञान न हो जाय कि संसार की रचना में उसकी अपनी वस्तु क्या है, वह जीवन से क्या लाभ उठा सकता है ? अन्धकार में हाथ-पैर मारने से तो कुछ लाभ नहीं होता। संसार में प्रायः मनुष्य की आज जो दशा है, वह कुछ इसी प्रकार की है कि वह अन्धकार में हाथ-पैर मार रहा है। उसको इस बात का ज्ञान ही नहीं कि वह इस संसार में क्यों और किसलिए आया है ? संसार की वास्तविकता क्या है और संसार के अन्दर उसका अस्तित्व किस लिए है ? सन्त चेतावनी देते हैं—

तुझे मालूम है किस वास्ते,
इस बाग में आया।
वह क्या मतलब था जिसके,
वास्ते भगवान ने भिजवाया ॥
किसी ने भी न भूले से,
इधर कुछ ध्यान फरमाया।
कि मैं कौन हूँ, जाता हूँ किधर,
किस कार्य से आया ॥

ऐ मनुष्य ! क्या तुझे इस बात का ज्ञान है कि तू इस संसार-उपवन में किस लिए आया है और परमात्मा ने तुझे किस कार्य के लिए यहाँ भेजा है ? तू इस कदर असावधान हो गया है कि इस ओर भूलकर भी ध्यान नहीं देता कि तू कौन है, कहाँ से आया है और तुझे जाना है कहाँ ? तुझे क्या करना था और कर क्या रहा है ? संसार की मन-मोहकता में तू इस कदर खो गया है कि तुझे अपने वास्तविक घर का भी स्मरण ही नहीं रहा।

यदि किसी मनुष्य से पूछा जाय कि तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा घर कहाँ है, कहाँ से आये हो और कहाँ तुम्हें जाना है अगर इन सारे प्रश्नों का उत्तर वह यह दे कि उसे कुछ पता नहीं, तो ऐसी दशा में उस व्यक्ति को संदिग्ध समझकर पुलिस उसका चालान कर देगी। जब तक वह अपना सही नाम-पता नहीं बतायेगा और अपनी पहचान नहीं करायेगा, तब तक वह पुलिस के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता।

भगवान की भी पुलिस है और वह पुलिस है—धर्मराज तथा उसके कर्मचारी। नीच योनियाँ जेलखानों के समान हैं। जब तक मनुष्य को इन बातों का ज्ञान नहीं हो जाता कि वास्तव में "मैं कौन हूँ, मेरा क्या नाम है, मेरा वास्तविक घर कौनसा है इत्यादि।" अर्थात् जब तक वह वास्तविकता से भूला हुआ है, तब तक उसे धर्मराज की जेल की हवा खानी ही पड़ेगी, अर्थात् नीच योनियों में चक्कर काटने ही पड़ते हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य स्वयं अपने स्वरूप की पहचान कर सकता है अथवा इस कार्य के लिए उसे किसी और शक्ति की सहायता की आवश्यकता है ? इसका उत्तर

सन्तों ने यह दिया है कि बिना परिपूर्ण सत्पुरुषों की सहायता के यह कार्य कदापि न हो सकेगा। सत्पुरुषों के संग में जाकर ही मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान हो सकता है, इसलिए सत्संग की महिमा है।

किन्तु जीव की यह कितनी अज्ञानता है कि जब कभी सौभाग्य से उसे सन्तों का मिलाप होता है और उसे वे उपदेश करते हैं कि वह सत्संग में आया-जाया करे, तो वह टाल-मटोल करता है और कहता है कि महाराज! आपका कथन तो सत्य है, परन्तु क्या करूँ? मेरे पास समय नहीं है। क्या उसका ऐसा कहना उचित है? नहीं, कदापि नहीं, परन्तु जीव मोह-माया में इस कदर फँसा होता है कि उसे अपनी लाभ-हानि, भलाई-बुराई की समझ ही नहीं होती।

सन्त तो सहज स्वभाव ही जीव की भलाई को दृष्टि में रखकर उसे प्रेमपूर्वक समझाते हैं और उसे सन्मार्ग पर चलने का परामर्श देते हैं। वह माने तो उसका भला, न माने तो उसकी इच्छा। उनके पास न कोई डण्डा है और न कोई दण्ड। वे तो अपना कर्त्तव्य निभाते हैं। मगर धर्मराज की आज्ञा तो माननी ही पड़ेगी, क्योंकि उसकी पुलिस के पास ऐसा अस्त्र है, जिससे जीव कदापि बच नहीं सकता।

दोहा

अन्त समय जब आयेगा,
जम पकड़ेंगे बाँहि।
उनसे भी जरा कह दियो,
मोहे तो फुरसत नाहिं॥

ईरान के प्रसिद्ध हकीम लुकमान का जब अन्तिम समय निकट आया तो उसे पहले से ही ज्ञात हो गया कि अमुक समय उसकी मृत्यु होगी। अपनी चतुराई के बल पर उसने एक उपाय मृत्यु से बचने का सोचा। उसने अपने ही जैसे अनेक बुत बनवाकर एक कमरे में रख दिये। यद्यपि उनमें जीवन तो नहीं था, परन्तु वे जीवित से दिखाई पड़ते थे। लुकमान के शरीर और उन बुतों में बाल-बराबर भी अन्तर नहीं था। लुकमान स्वयं भी उन्हींके मध्य चुपचाप बैठ गया। निश्चित समय पर जब धर्मराज के दूत लुकमान को लेने आये तो क्या देखते हैं कि यहाँ तो कई लुकमान बैठे हैं। वे अचम्भित होकर वापिस लौट गये और धर्मराज को सब समाचार सुनाया और कहा कि महाराज! वहाँ तो अनेक लुकमान बैठे हैं, हम कौनसे लुकमान को ले आयें।

धर्मराज ने उनको एक युक्ति बतलाकर पुनः वहाँ से जाने को कहा। दूत पुनः वहाँ आये और सभामें घूम-फिरकर सबको टटोला और बोले—लुकमान! आश्चर्य है तुम्हारी कला पर, परन्तु एक त्रुटि तो रह ही गई। यह सुनते ही लुकमान झट से बोल उठा—बताओ वह त्रुटि कौनसी है, मैं अभी उसे दूर कर देता हूँ। लुकमान के इतना कहते ही दूतों ने यह कहते हुए उसके प्राण हर लिए कि पगले! तुमसे यही त्रुटि रह गई कि तुझे ज्ञात ही नहीं कि काल के पंजे से कोई भी नहीं बचा है।

सत्पुरुष चेतावनी देते हैं कि ऐ मनुष्य! जिस संसार के सुख भोग पर तू मुग्ध हो रहा है, यह केवल एक-दो पल का है। यह अधिक समय तक टिकने वाला कदापि नहीं, क्योंकि इस नश्वर शरीर से जैसे ही आत्मा ने गमन किया तो यह किसी काम का न रहेगा।

विकसित पुष्प मुरझा जाने पर धूल में मिलकर यह चेतावनी देते हैं कि ऐ मनुष्य! मेरे समान तुम्हारा जीवन भी अस्थायी है,

इस पर गर्व न करो और अच्छा है कि अभी से ही परलोक का सामान बना लो अर्थात् परमात्मा का भजन-सुमिरण करलो।

जो मुकुट पहिने सिंहासन पर बैठते थे, उनका पता उनकी कब्रों के तख्तों से केवल इतना ही मिलता है कि वे कभी शासक थे, इसके अतिरिक्त उनका और कोई चिह्न नहीं मिलता। जो अपनी मधुर वाणी के कारण संसार में प्रसिद्ध थे, आज उनकी कब्र से कोई भी शब्द सुनायी नहीं पड़ता। फूल से भी जो कोमल एवं सुकुमार थे, आज संसार के उपवन में उनका अस्तित्व नष्ट हो गया है और जिनके डंके के शब्द से धरती-आकाश गूंज उठते थे, आज ऐसे विख्यात व्यक्ति कब्र के कोने में चुपचाप पड़े हैं।

इसलिए सत्य तो यह है कि संसार के सुखोंका आनन्द वास्तव में उसी ने ही लिया, जिसने सत्पुरुषों की शुभ संगति के प्रताप से यह विश्वास कर लिया कि संसार के सुख-भोगों में सुख कुछ भी नहीं है। यह संसार केवल धोखा और छलावा है।

बेचारे लुकमान हकीम ने मृत्यु से बचने का बहुत यत्न किया। जब कोई युक्ति सफल न हुई तो अन्त में उसने मरते-मरते ये शब्द कहे कि प्रियवर ! मृत्यु की औषधि वास्तव में कोई भी नहीं। यह मेरी अज्ञानता थी जो मैंने सोचा कि मृत्यु के मुख में जाने से बच जाऊंगा। यह आकाश तो डंके की चोट पर कह रहा है कि जिस समय पर तुम विश्वास कर रहे हो, यह कुछ भी नहीं है। यह संसार भी कुछ नहीं है और जिन सांसारिक भोगों पर तुम फूल रहे हो, वे भी कुछ नहीं हैं।

सिकन्दर बादशाह को भी संसार की बड़ी तृष्णा थी। उसका जब अन्त समय निकट आया तो उसने सोचा कि जाते-जाते संसार को कुछ शिक्षा दे जाऊं। उसने अपने दरबारियों, शूरवीरों, अफसरों, अपनी रानियों तथा परिवारके समस्त लोगोंको अपने निकट बुला लिया और अपना सारा खजाना भी वहीं मंगवा दिया। ईरान एवं यूनान देश के प्रसिद्ध हकीमा भी सब वहीं उपस्थित थे,बारी-बारी सबसे पूछने लगा कि क्या इस कठिन समय में कोई मेरी सहायता कर सकता है अर्थात् मुझे कालके चंगुल से बचा सकता है। सबने अश्रु बहाते और ठण्डी सांस लेते हुए अपनी विवशता प्रकट की। तब सिकन्दर ने यह वसीयत प्रकट की कि मेरी मृत्यु के पश्चात् अरथी बनाते समय मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर रखे जायें और मेरी अरथी हकीमों के कन्धों पर उठवा कर पूरे नगर की गलियों में घुमायी जाय, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को भली-भाँति ज्ञात हो जाय कि आज सिकन्दर महान जैसा बादशाह भी खाली हाथों संसार से जा रहा है।

ऐसे इतिहासों के पढ़ने-सुनने से जीव की आँखें खुलती हैं और उसे पता चलता है कि जिस तन-धन आदि पर मनुष्य गर्व करता है और उन्हें अपना समझता है, वास्तव में वे वस्तुयें उसकी अपनी नहीं हैं। जब ये वस्तुयें अपनी नहीं, अपने साथ आई नहीं और अपने साथ जानी,नहीं फिर इनसे अनुचित मोह क्यों लगा रहा है ? मेरी अपनी वस्तु तो केवल परमात्मा का सच्चा नाम है जो तुझे अपने सद्गुरु से प्राप्त हुआ है। नाम में ही अपने ध्यान के तार को जोड़ दें, जिसने इसको अपने पल्ले बांध लिया। वह महाराजा है वरना संसार के पदार्थ रखता हुआ भी कंगाल है।

दोहा

कबीर सब जगह निर्धना,
धनवन्ता नहि कोय।
धनवंता सोई जानिये,
(जाके) सत्तनाम धन होय ॥

संसार जिसे धनवान समझ रहा है, वास्तव में वह धनवान नहीं। धनवान तो उसको ही समझना चाहिए, जिसके पास परमात्मा का नामरूपी धन है।

सद्गुरु का शब्द परलोक के लिए टिकट के समान है। प्रत्येक को एक दिन परलोक की यात्रा करनी है। यह भी आवश्यक है कि यात्रा करते समय मनुष्य टिकट को सम्भाल कर रखे। इसी प्रकार परमात्मा के धाम की यात्रा के लिए भी नाम अर्थात् सद्गुरु शब्द रूपी टिकट का मनुष्य के पास होना आवश्यक है।

सन्त सद्गुरु की शरण-संगति में आकर ही जीव अपने स्वरूप की पहचान कर सकता है और यही मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य है। इसीलिए यह मनुष्य तन लिया है।

आनन्द की लहरें

(श्रुति-सार)

- किसी भी अवस्था में मन को व्यथित मत होने दो, याद रखो—परमात्मा के यहाँ कभी भूल नहीं होती और न उसका कोई विधान दया से रहित ही होता है।
- परमात्मा पर विश्वास रखकर अपनी जीवन डोरी उसके चरणों में सदा के लिए बांध दो, फिर निर्भयता तो तुम्हारे चरणों की दासी बना जायगी।
- इस संसार में सभी सराय के मुसाफिर हैं, थोड़ी देर के लिए एक जगह टिके हैं, सभी को समय पर यहाँ से चल देना है, घर-मकान किसी का नहीं है, फिर इनके लिए किसी से लड़ना क्यों चाहिये ?
- मान चाहने वाले ही अपमान से डरा करते हैं। मान का बोझा मन से उतरते ही मन हल्का और निडर बन जाता है।
- शरीर का नाश होना मृत्यु नहीं है, मृत्यु है वास्तव में पाप की वासना !
- प्रतिदिन सुबह और शाम मन लगाकर भगवान् का स्मरण अवश्य किया करो, इससे चौबीसों घण्टे शान्ति रहेगी और मन बुरे संस्कारों से बचेगा।

श्रेय और प्रेय

● काका कालेलकर

थोड़े शब्दों में गम्भीर विचार सुन्दर ढंग से व्यक्त करने की उपनिषद के ऋषियों की शैली के बारे में कहना ही क्या ! पढ़ते-पढ़ते पता नहीं चलता कि बीच-बीच में आने वाले ऐसे सुन्दर वचन कब और कैसे कण्ठ हो गये ? सोच रहा हूँ कि इस तरह आप ही आप कण्ठ हुए औपनिषदिक वचनों का संग्रह करूँ और एक-एक वचन पर एक-एक अथवा अधिक प्रवचन लिखूँ । जिस वक्त जो भाव मन में प्रधान हो जायें, उसी को लेकर एक प्रवचन लिखूँ और उसे भूल जाऊँ । तब बिल्कुल अलग दूसरे सन्दर्भ में वही वचन नया अर्थ और नया सन्देशा देता है । उसका प्रवचन अलग ही होता है । पता नहीं, चंद वचनों के इस तरह कितने अवतार हो चुके होंगे ।

आज इन वचनोंसे प्रारम्भ नहीं करूँगा, लेकिन दो-दो शब्दों की दो-दो जोड़ियों से प्रारम्भ करने को जी चाहता है ।

पहली जोड़ी है श्रेय और प्रेय की । यह जोड़ी लोक-चिन्तन में बार-बार आती है । इसलिए इसमें कोई नवीनता नही दीख पड़ती, लेकिन जब कठोपनिषद् के ऋषि ने श्रेयस् और प्रेयस् का भेद बताया तब सुनने वाले अन्तेवासियों को कितना हर्ष हुआ होगा । श्रेयस् और प्रेयस् के साथ ऋषि विद्या और अविद्या को भी ले आये हैं और बाद में हमें साम्पराय (मृत्यु के बाद की स्थिति) तक ले गये हैं ।

(कठोपनिषद-१ अ० २ वल्ली)

हर मनुष्य सुख चाहता है, दुःख को टालता है । सुख-दु:ख दोनों भावनायें जीवन में प्रधान प्रेरक तत्व हैं, लेकिन तत्व-ज्ञान कहता है कि सुख और दुःख दोनों अन्धे हैं । उनका निर्णय नहीं मानना चाहिए । आज इन दोनों शब्दोंका अर्थ चाहे जितना व्यापक हो, असली अर्थ तो इन्द्रियों के साथ ही सम्बन्ध रखता है । सुख और दुःख दोनों में जो समान अक्षर है 'ख', उसका अर्थ होता है 'इन्द्रिय ।' इन्द्रियों के लिए जो अनुकूल है, वह है सुख । इन्द्रियों को जो चीज प्रतिकूल है, उसे कहते हैं दुःख ।

जीवन का रहस्य समझने वाले ऋषि कहते हैं, सुख इन्द्रियों के लिए अनुकूल है । इसीलिए उसके पीछे जाना बहुत बार खतरनाक होता है । इन्द्रियों के लिए जो चीज अनुकूल है, वही जीवन के लिए बाधक होती है । तब उसे छोड़ने के लिए जो भावना अन्दर से सलाह देती है, उसी को कहते हैं श्रेय ।

कभी-कभी दुःख सहन करने में पीड़ा चाहे जितनी भी हो, हमारी उन्नति ही होती है । जीवनानुभव समृद्ध होता है । ऐसे समय में इन्द्रियां भले ही कहें कि यह दुःख टालो,

टालो, टालो, टालो, हमें इन्द्रियों की आवाज नहीं सुननी चाहिए और अभिनन्दन के साथ दुःखको स्वीकार करना चाहिए। जो भावना ऐसी शुभ और हितकर सलाह देती है, वही है श्रेयस्।

ऐसा अनुभव नित्य होने के बाद अनुभव के लिए यथायोग्य शब्द बनाकर देने वाले ऋषियों ने हमें दो शब्द बना करके दे दिये, प्रेयस् और श्रेयस्। सुख-दुःख की सलाह मान कर चलता है प्रेयस् और जीवन के लिए जो अत्यन्त हितकर है, कल्याणकारी है, शुभ-परिणामी है उसके लिए शब्द बनाया श्रेयस्।

और फिर अपने अनुभव के बल पर मानव-जाति को ऋषियों ने सलाह दी, "श्रेयस् अलग है, प्रेयस् अलग है, दोनों का फल अलग है। श्रेयस्के पीछे जाने से कल्याण होता है, जो प्रेय को पसन्द करता है, उसकी हानि होती है। जब श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य के सामने आकर खड़े होते हैं, तब बुद्धिमान धीर पुरुष दोनों को पहचान लेता है।" अनुभव है कि धीर पुरुष प्रेय को एक ओर रखकर श्रेय को ही पसन्द करता है। जो आदमी बुद्धिमन्द है, वह तो अपनी सहूलियत देखकर प्रेय को पसन्द करता है।

बुद्धिमान जानता है कि हमारा जीवन मरण के साथ समाप्त नहीं होता। मरण के साथ शरीर समाप्त होता है। लेकिन हम तो शरीर के बिना जीवित रहकर समाज पर असर भी करते हैं। जन्म-मृत्यु के बीच का छोटा-सा जीवन पूर्ण जीवन नहीं है। मृत्यु के बाद का जो जीवन है (उसके लिए ऋषियों का शब्द है साम्पराय) उसका भी विचार करना चाहिए। तब जाकर श्रेय की शुभकारिता हम समझ सकते हैं।

इहलोक और परलोक मिल करके जो जीवन बनता है, वही सच्चा और पूर्ण जीवन है। उसी का विचार जिसे है, वही धीर पुरुष है, वही जीवन-संग्राम में विजयी बनता है।

● श्रीकृष्ण कहते हैं कि दुःख के साथ संयोग का वियोग होना अर्थात् दुःख के संयोग से अलग होना ही योग है। चित्तवृत्ति के कारण दुःख का संयोग होता है तथा चित्तवृत्ति शून्य होने पर दुःख के संयोग का वियोग (अभाव) हो जाता है। योग आत्मानुभूति की वह आनन्दावस्था है, जो दुःख के संयोग का अभाव कर देती है। योग दुःख का आत्यन्तिक उपाय है। विवेकशील पुरुष के लिए सांसारिक भोग दुःख रूप है। परमात्मा के साथ योग होना आनन्दप्रद योग है। मनुष्य को संशय और शिथिलता तथा निराशा और अधीरता को त्यागकर उत्साहपूर्वक एवं धैर्य-पूर्वक इस योग का अभ्यास करना चाहिए। निश्चय बुद्धि से श्रद्धापूर्वक तथा विश्वास सहित योगाभ्यास करने से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन,
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।

हे अर्जुन ! वेद के कर्मकाण्ड वाले विभाग का विषय त्रिगुणात्मक संसार ही है, इसलिए तू त्रिगुणात्मक संसार में अलिप्त होने की कोशिश कर। द्वन्द्व-रहित और हमेशा सत्व-गुण का आश्रय लेने वाला, सत्यनिष्ठ निर्योग-क्षेम यानी अन्न-वस्त्र की चिन्ता से मुक्त हो जा और आत्मनिष्ठ होने की कोशिश कर।

त्रैगुण्यविषया वेदा:-त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुणात्मक संसार। संसार में रहते हुए संसार से अलिप्त कैसे रह सकते हैं, यह बताना गीता का उद्दिष्ट है। इस श्लोक में बताया है कि यह त्रिगुणात्मक संसार ही वेद के कर्मकाण्ड का विषय है। कर्मकाण्ड में इसीकी चर्चा है, उसका लक्ष्य मोक्ष नहीं। वेद का ज्ञानकाण्ड, जिसे उपनिषद् कहते हैं, का लक्ष्य मोक्ष अर्थात् आत्यन्तिक अखंड सुख-शांति है। गीताको भी यही अभिप्रेत है। कर्मकाण्ड का लक्ष्य स्वर्ग-प्राप्ति तक ही सीमित है। सारा कर्मकाण्ड अनेक प्रकार के कर्मों पर खड़ा है, उसमें निष्कामताकी, ज्ञानकी चर्चा नहीं है। अर्जुन को संसार से अलिप्त होना था। वह शोक-मोहसे घिर गया था, उससे निकलने के लिए उसने भगवान से प्रार्थना की। भगवान कह रहे हैं कि शोक-मोहसे दूर होना है तो संसार में रहते हुए सकामता छोड़ निष्काम बनना पड़ेगा। इसीलिए वे कहते हैं :

निस्त्रैगुण्यो भव—तू त्रिगुणात्मक संसार रहते हुए उससे अलग हो जा यानी निष्काम बन। निष्काम बनने के लिए भगवान चार बातें कह रहे हैं :

(१) निर्द्वन्द्वो भव—द्वन्द्व से परे हो जा। द्वन्द्व यानी सुख-दुःख के निमित्त बनने वाले परस्पर विरोधी पदार्थ तथा जैसे शीत-उष्ण, लाभ-हानि, यश-अपयश। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पंच विषय हानि-लाभ पहुंचाते हैं। हानिप्रद पदार्थों से दुःख होता है और लाभप्रद पदार्थों से सुख या आनन्द। इन सुख-दुःखमूलक द्वन्द्वों से परे होनेके लिए भगवान कहते हैं। इस अध्याय के १४वें श्लोकमें शीत-उष्ण, सुख-दुःख को अनित्य समझकर सहन करनेके लिए कहा गया है। शंकराचार्य कहते हैं :

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्
व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं
सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्॥

अर्थात् तुझमें, मुझमें और सबमें एक विष्णु यानी परमात्मा ही है, तू व्यर्थ क्रुद्ध हो जाता है। सृष्टिमें जो यह द्वन्द्व है, उसे सहन करता जा। प्राणिमात्र में आत्मा को देख और सभी जगह भेदरूपी अज्ञान को त्याग दे।

इस श्लोक में शंकराचार्य ने द्वन्द्व से परे होनेके लिए दो उपाय बताये हैं—मेरेमें, तेरेमें और सबमें परमात्मा को देखने का अभ्यास करना और सुख-दुःख देनेवाले द्वन्द्व को बिना क्रोध या उत्तेजनाके शांत चित्तसे सहन करना।

(२) नित्यसत्वस्थः भव—नित्यसत्वस्थ हो जा। सृष्टिमें सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं, इनसे हमेशा सम्बन्ध आता है, उसे टाल नहीं सकते। इनमें सत्व-गुणके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखकर उसे बढ़ाते हैं, विकास करते हैं तो वह हमें ऊँचा उठाता है, हमारी उन्नति होती है। यदि हमने रजोगुण और तमोगुणको बढ़ाया, उसी का उत्कर्ष किया तो वे हमें नीचे गिराते हैं, हमारी अवनति करते हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि यदि निष्काम बनना है तो हमेशा सत्वगुण के साथ सम्बन्ध रखना होगा। प्रत्येक व्यवहार को सात्विक करना होगा। सात्विक बोलना, खाना, कर्म करना; सात्विकता बढ़ाने वाले सद्ग्रंथ पढ़ना, सत्संग करना, यज्ञ, दान और तप सात्विक करना; सात्विक सुख लेना; सात्विक कर्त्ता

बनना—इस तरह हमें सात्विकता में हमेशा स्थित रहना चाहिए।

(३) निर्योगक्षेमः भव—योगक्षेम का सामान्य अर्थ है अन्न-वस्त्रकी चिंता। अन्न-वस्त्रविषयक कल्पना हरएक की अलग-अलग होती है। हर एक का जीवन-स्तर अलग-अलग रहता है। परिवार को चलाने में हरएक को आर्थिक निश्चिन्तता रहती है, सो बात नहीं। परिवार की परिस्थिति सबकी समान नहीं होती, अतएव यह चिन्ता का विषय हो जाता है। योग-साधना में अन्न-वस्त्र की चिन्ता भारी बाधा मानी जाती है। मनुष्य परिवार में रहता है, परिवारमें माता-पिता, भाई-बहन, बाल-बच्चे होते हैं, सबसे अधिक आसक्ति परिवारकी रहती है। इसीलिए गीताके पहले अध्याय में अर्जुन के लिए भी पारिवारिक मोहका ही प्रसंग खड़ा किया गया है। पारिवारिक मोह या आसक्ति इतनी जबरदस्त है कि अर्जुन जीवनभर जिस कर्तव्यका, धर्मका भलीभांति पालन करता आया, उसी को छोड़ने के लिए क्षणभर में तैयार हो गया। स्वकर्तव्यसे च्युत होगया। इसीलिए 'यदृच्छा लाभसंतुष्टः' (४/२२) की वृत्ति रखनी चाहिए संत तुलसीदासजी ने कहा है—'आठवीं भक्ति यथालाभ संतोष है।' विनोबाजी उदाहरण देते हैं—'घोड़ेपर बैठने के बाद अपना सामान घोड़े पर ही रखना चाहिए। लेकिन घोड़े पर बैठनेके बाद यदि कोई सामान को अपने सिर पर रखे तो वह मूर्ख साबित होगा। वैसे ही जिस परिस्थिति में भगवान ने हमें रखा है, उसमें अपनी आर्थिक परिस्थिति ठीक रखनेके लिए कोशिश करते हुए जो स्थिति सहज प्राप्त है, उसमें संतोष रखकर चलने पर बिना किसी बाधाके निष्काम बनने का योगाभ्यास चलेगा।'

निर्योगक्षेम का दूसरा अर्थ भी है। 'योग-क्षेम' शब्द में दो शब्द हैं : योग और क्षेम। योग यानी 'अप्राप्त वस्तु प्राप्त करना' और क्षेम यानी 'प्राप्त वस्तु का रक्षण करना।' योग-साधना करनेवाले साधकका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। मोक्ष अप्राप्त वस्तु है, उसे प्राप्त करना है, सो वह कब प्राप्त होगा, इसकी चिंता साधक को हो सकती है। वैसे ही जो योग-भूमिका हासिल हुई जो निष्कामता प्राप्त हुई है वह कैसे टिकेगी, इसकी चिंता भी साधकको हो सकती है। भगवान बता रहे हैं कि योग-साधना करने के विषय में भी चिंता छोड़ देनी चाहिए। सब ईश्वर पर छोड़कर निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

(४) आत्मवान् भव—आत्मवान् यानी आत्मनिष्ठा। वृत्तियों का प्रवाह आत्मा, परमात्माकी तरफ होना चाहिए। हम सब देह-निष्ठ यानी देहासक्त रहते हैं। भगवान कहते हैं 'देहकी आसक्ति छोड़कर परमात्म-निष्ठ रहो, परमात्मा की आसक्ति रखो।' (७/१) में भगवान् ने 'मय्यासक्त' कहा है। देह की, रिश्तेदारों की, मित्रों की आसक्तिका भगवान निषेध करते हैं। परमात्मा की आसक्ति के अलावा अन्य किसी की भी आसक्ति रखते हैं तो वह दुःखदायक होती है। परमात्माकी ही आसक्ति सिर्फ आनन्द देने वाली है। रिश्तेदारोंके प्रति आसक्ति छोड़ने का मतलब यह नहीं कि उनके प्रति जो कर्तव्य है उसे छोड़ दें।

आत्मवान् का दूसरा एक अर्थ है सावधान या जाग्रत होना। जो पुरुष परमात्मा में निष्ठा रखता है वह अखंड जागृत या सावधान रहता है। विषयोंमें आसक्त होनेसे अनेक कामनाओं के कारण हम सोये रहते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य गौड़पाद ने कहा है :

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्ध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्ध्यते तदा॥

अर्थात् जब अनादिकाल से चली आ रही मायासे सोया हुआ जीव जागृत हो जाता है, तब जिसमें जन्म नहीं है, जिसमें निद्रा नहीं जिसमें स्वप्न नहीं है उस अद्वैत यानी परमात्मा को जान लेता है।

ध्यानदीप

● श्री शिवानन्द

कोई भी मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता हो अथवा न करता हो, जीवन के अस्तित्व को तो सभी को स्वीकार करना पड़ता ही है। जीवन के मूल स्रोत भीतर ही हैं और मानव को उनके साथ सम्पर्क एवं सम्बन्ध जोड़कर ही स्थायी शांति सुख एवं सम्बल प्राप्त होते हैं। ईश्वरवादी मानते हैं कि आत्मा चैतन्य स्वरूप एवं ईश्वर का अंश है तथा आत्मसाक्षात्कार करना ही मानो ईश्वरतत्व के साथ एकीकरण है। अथवा, जीव का कल्याण ईश्वर की शरण में जाने पर ही होता है। हमारी अशान्ति के कारण हमारे भीतर ही हैं तथा हमारे आनन्द का अक्षय भण्डार भी भीतर ही है। हमें दुख की निवृत्ति एवं सुख की उपलब्धि के लिए भीतर ही प्रयत्न करना है।

मनुष्य-देह में इन्द्रियां बहिर्मुखी झरोखे हैं और उनके द्वारा बाह्य जगत् के साथ क्रिया, प्रतिक्रिया होने पर मनुष्य अपने भीतर अलग ही अपनी एक दुनिया को बसा लेता है। यह स्वनिर्मित संसार ही मनुष्य के सुख और दुख का कारण होता है। विचक्षण व्यक्ति इससे भी परे जीवन के मूल स्रोत के साथ सम्बद्ध होकर स्थायी सुख को प्राप्त कर लेता है। ध्यान साधना के द्वारा, जो अध्यात्म का मूलाधार है, यह सम्भव हो सकता है।

आध्यात्मिकता मनुष्य को पलायन नहीं सिखाती है बल्कि उसके अन्तर्जगत को सुव्यवस्थित कर उसे कर्म की ओर प्रवृत्त करती है तथा उसे समभावजनित स्थायी सुख एवं शान्ति प्रदान करती है। अध्यात्म एक विज्ञान है, एक कला है, एक दर्शन है। अध्यात्म मानव के जीवन में जीने की कला के मूल रहस्य को उद्घाटित कर देता है। आध्यात्मिक वातावरण मानो मन के जख्मों को धोकर, उन पर दिव्य मरहम लगाकर मानव को मानसिक स्वस्थता प्रदान करता है। निद्रा की भांति ध्यान का दैनिक अभ्यास स्वास्थ्य एवं शान्ति के लिए परम आवश्यक है। थकने पर निद्रा कैसी सुखदा प्रतीत होती है। निद्रा आने पर मनुष्य श्रेष्ठ संगीत, भोज्य पदार्थ एवं भौतिक सत्ता को भी भूल जाता है, वे हेय हो जाते हैं। जाग्रत अवस्था में ध्यान अन्तरंग का एक गहन सुख होता है जो अनिर्वचनीय है। जीवन में भव्यतम क्या है, इसका दर्शन ध्यान द्वारा ही सम्भव है। इसकी तुलना में समस्त सुख फीके प्रतीत होने लगते हैं।

ध्यान कोई तन्त्र-मन्त्र नहीं है। मन को विपरीत दिशा में अर्थात् बाहर से भीतर की ओर ले जाना और उसे विचारों के स्रोत के साथ जोड़ देना एक कला है जिसे ध्यान कहते हैं। ध्यान मन की एकाग्रता नहीं बल्कि मन को भीतरी चेतना के साथ जोड़ना है।

ध्यान एक साधना है जिसके द्वारा हम अपने भीतर आत्मानन्द उपजाते हैं। केसर सब स्थानों पर उत्पन्न नहीं होती है, उसके लिए उपयुक्त स्थान खोजना होता है तथा एक विशेष पद्धति अपना कर अथक परिश्रम करना होता है। हमें आत्मानन्द उपजाने के लिए भी प्रयत्न (साधना) करना होगा। ध्यान साधना आत्मानन्द प्राप्ति का एक साधन है। ध्यान सम्पूर्ण मन के मौन के द्वारा उस अवस्थान्तर प्राप्त होने का साधन है जो बुद्धि-ग्राह्य नहीं है। ध्यान के द्वारा मन अपने संचित ज्ञान एवं अनुभव से अथवा बौद्धिक स्तर से ऊपर उठ जाता है। यह स्थित कोई रिक्तता अथवा शून्यता नहीं है बल्कि बुद्धि के व्यापार से मुक्त होकर उससे परे सूक्ष्म अध्यात्मके सागरमें प्रवाहित होना है जो कि स्थूल जगत् से परे है। ब्रह्मसूत्र में 'ध्यानाच्च' का भाष्य करते हुए शंकर कहते हैं कि एक प्रत्यय का प्रवाह करना ही ध्यान होता है। आध्यात्मिक भूमिका में यह प्रवाह परमानन्द का प्रवाह है।

मौन ध्यान का प्रथम चरण है। "मौन" का अर्थ केवल मात्र वाणी का मौन होना नहीं है। वाणी का मौन तो प्रारम्भ है। मौन का अर्थ है बाह्य संचरण छोड़कर अन्तः सञ्च-रण करना। "मौन" का अर्थ है, संयम के द्वारा धीरे-धीरे इन्द्रियों तथा मन के व्यापार का शमन (दमन नहीं) होना। मौनं सर्वार्थ साधनम्। मौन समस्त सिद्धियों के मूल में है। तो मौन तन्द्रा की भांति मन को ताजा तथा सशक्त कर देता है। यदि वाणी रजत है, मौन स्वर्ण है। मौन रहकर ही परमात्मा सृष्टि-रचना एवं विश्व-संचालन करता है। प्रभु के साथ संलाप मौन होकर ही सम्पन्न होता है। अनुभूति की चरम-सीमा मौन होती है। प्रेम, भक्ति और योग चरमावस्था में मौन में परिणत हो जाते हैं। सन्त का मौन उसकी गहन अनुभूति का द्योतक होता है। वाणी-निग्रह संयम का प्रारम्भ है।

हमारे भीतर गहरे स्तर पर आनन्द-स्व-रूप आत्मा है जो हमारा निजस्वरूप है। अभी मन उसकी ओर उन्मुख न होकर, बाहर भटक रहा और सुखाभास को सुख समझ रहा है। जब तक हम भीतर आनन्द के स्रोत को नहीं पा लेते, तब तक हम बाहर के सुख की खोज में भटकते ही रहते हैं। बाहर भोगों से आकृष्ट होकर उनमें भटकते रहने से भीतर चेतना नहीं सिमिट सकती है। ध्यान के द्वारा रसोमय प्रभु के साथ सम्बन्ध जुड़ जाते हैं और जीवन एक स्थायी सुख (आनन्द) हो जाता है। जब मन ठीक प्रकार से भीतर की ओर उन्मुख होता है, तब वह स्वयं उनकी ओर तीव्रता से दौड़ता है मानो ढलान पर दौड़ रहा हो। तब वह स्वयं उसकी ओर तीव्रता से दौड़ता है मानो ढलान पर दौड़ रहा हो। तब चंचल मन नीवातस्थदीपशिखा की भांति स्थिर हो जाता है। गीता कहती है 'जिस प्रकार शान्त वायु के स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता है, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में संलग्न योगी के जीते हुए चित्त की भी कही गयी है।'

यथा दीपो निवातस्थो
नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य
युञ्जतो योगमात्मनः॥

(गीता ६/१९)

जब मन ध्यान के द्वारा आनन्दस्वरूप आत्मा के सिन्धु में निमग्न होकर बाहर

निकलता है, तब वह तृप्त एवं सशक्त हो जाता है। व्यक्ति की सीमित चेतना असीम चेतना के साथ जुड़ जाती है। मौन की सफलता होने पर ही ध्यान की सफलता होती है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—

मौनं चैवास्मि गुह्यानाम् ।

(गीता १०/३८)

अर्थात् गुह्य रखने योग्य भावों में मनोभाव भी भगवान् का ही रूप है। मौनप्रभु प्राप्ति का प्रमुख साधन है। महाभारत के उद्योग पर्व में सनत्सुजात धृतराष्ट्र से कहते हैं कि परमात्मा का ही नाम मौन है क्योंकि वेद भी परमात्मा को नहीं पहुँच पाते और परमेश्वर मौन-ध्यान करने से प्रकाश में आते है।

यतो न वेदा मानसा सहैनमनु-
प्रविशन्ति ततोऽथमौनम् ।
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं स
तन्मयत्वेन विभाति राजन् ।।

(उद्योगपर्व ४३/२)

मौन की महिमा उद्योगपर्व में मुहुर्मुहुः गाई गयी है—

विदित्वेति सदाकार्यं मौनं
सद् ध्यानदीपकम् ।
निहत्य सिद्धये नित्यं
बाह्यवाग्जालमञ्जसा ।।
यतो मौनेन दक्षाणां
स्वप्नेऽपिकलहोऽस्ति न ।
मौनेनाशु हि म्रियन्ते
रागद्वेषादयो रमाः ।।
मौनेन गुणराशिश्च
लभ्यते सकलागमम् ।
मौनेन केवलं ज्ञानं
मौनेन श्रुतमुत्तमम् ।।

अर्थात् बाह्य वाग्जाल को रोककर श्रेष्ठ ध्यान के लिए दीपक के समान मौनव्रत धारण करें। मौन धारण करने से स्वप्न में भी कलह नहीं होता है। मौनव्रत धारण करने से रागद्वेषादि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। मौन से गुणराशि प्राप्त होती है, मौनसे ज्ञान प्राप्त होता है। मौन से केवल-ज्ञान प्रकट होता है। मौन से उत्तमश्रुत ज्ञान प्राप्त होता है। गीता में मौन की प्रशंसा की है। "तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनी।" "मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।" मन की वृत्तियों के मौन को ही मौन कहा जाता है। मौनी के लिए स्तुति और निन्दा भी एक समान होते हैं क्योंकि वह वृत्तियों के शमन द्वारा निन्दा-स्तुति से ऊपर उठ जाता है।

साधक मौन-ग्रहण के समय वर्तमान घटनाओं में रुचि न लें, कल की चिन्ता न करें और भविष्य की योजना न बनायें। निरन्तर रामनाम (प्रभु नाम) जपने और मन में राम (इष्टदेव) अथवा किसी सन्त के स्वरूप पर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न करें। निद्रा आ जाय तो लेटकर सो जायें। मौन का उद्देश्य है मन में व्यक्तिगत घृणा, ईर्ष्या-द्वेष और क्रोध से ऊपर उठने का संकल्प लेकर चित्त शुद्धि करना, प्रेम तथा क्षमा को अपनाना एवं मानसिक पवित्रता तथा जपादि के द्वारा प्रभु के साथ आत्मसात् होना, आत्मसमर्पण भाव में रहना, आध्यात्मिक प्रगति करना। यही अन्तर्मौन है। (क्रमशः)

दो गद्य गीत :—

(१)

पार्थसारथि;

जीवन-कुरुक्षेत्र में जूझते-जूझते मेरे स्वर्ण-रथ का एक पहिया किसी अज्ञात के शाप से रण की रक्त-कीच से लथ-पथ होकर पृथ्वी में धँस गया है;

ऐसी दारुण परिस्थिति में विपक्षी महारथी धनुर्धारी कर्ण का तो कपिध्वज अर्जुन को वरदान कर तुम ने काम ही तमाम कर दिया था;

तुम्हारी जन्म-जन्म की दासी दिनेश वृन्दा की नवविकसित मंजरियों की महक से सुवासित यमुन-जल को मृत्तिका की झारी में भरकर इस दुःख की घड़ी में तुम्हारा आह्वान कर रही है;

लक्ष्मी को क्षीर समुद्र में शेष-शय्या पर सोती छोड़कर गजेन्द्र-मोक्ष की भाँति अविलम्ब आ उसके दस अश्वों से खींचे जाने वाले रथ का चक्रोद्धार कर, रासों को अपने हाथों में लेकर, यात्रा के अन्त तक सकुशल पहुँचा देना, नहीं तो 'पत्र पुष्प फल तोयं' से ही रीझ उठने का तुम्हारा प्रण झूठा हो जायेगा; और,

कृष्णचन्द्र ! कातर अबला की आहों के धूम्र से और भी काले बन जाओगे !!

(२)

आली,

मैं लज्जा से गड़ जाती हूँ जब संसार मुझे इन गीतों की कवयित्री होने का श्रेय देता है;

मैं तो उस वंशी के समान हूँ जो साँवरे के बिम्बाधरों के बीच दबी रहकर, उसके अधरामृत का सतत् पान करती हुई, अपनी भुवन-मोहिनी स्वरलहरी से चराचर को रसाम्बुधि में डुबोकर तल्लीन कर देती है;

भक्तगण उसे वेदत्रयी, वेदमाता, गायत्री, सावित्री आदि कहकर पुकारते हैं, गोपबालायें मन में उससे ईर्ष्या करती हैं और उसके भाग्य को भूरि-भूरि सराहती हैं;

किन्तु,

रविनंदिनी कहती है कि कवि और गायक तो वही है जो वंशी में अमृत फूँक कर उसके छिद्रों से दिव्य सङ्गीत का सृजन करता है;

मुरलीधर के बिना मुरलिया के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना ही कैसी ?

—श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया

जीवन तत्व साधन से—

पग चालन

● श्री सद्गुरुदेवजी द्वारा

जीवन-तत्व साधन की तीसरी क्रिया का नाम पग चालन है। इसको करने के लिए सीधे चित्त लेट जाना चाहिए। दोनों हाथ बगल में पड़े रहें। अब अपने एक पैर को दूसरे पैर पर रख करके साधारण गति से हिलाना चाहिए। हिलाने का क्रम यह होगा कि पहले हम अपने दांये पैर को बांये पैर के टखने पर रखें और दांये पैर की ऐड़ी को जमीन से लगायें। फिर बांये पैर के अँगूठे को जमीन से लगावें। दायीं ऐड़ी जमीन से लगाते समय बांया अँगूठा उठ जायगा और बांया अँगूठा जमीन पर उठाते समय दायीं ऐड़ी जमीन से ऊपर उठ जायगी, इसी तरह एक बार ऐड़ी जमीन से मिलायें, फिर अँगूठा इसी तरह उठाते रहें और कम से कम चार मिनट तक इस क्रिया को करें, इसके बाद पाँव बदल लें अर्थात् बांये पैर को दाहिने पैर के टखने पर रखना चाहिए और बांये पैर की ऐड़ी और दांये पैर के अँगूठे को बारी-बारी से जमीन में मिलाते रहना चाहिए, उसको भी कम से कम चार मिनट तक करना चाहिए अर्थात् पग चालन क्रिया को आठ मिनट तक करने का विधान होता है। इस क्रिया को आवश्यकतानुसार और अधिक समय तक किया जा सकता है।

यह क्रिया बहुत साधारण है और करने में सरल भी है, किन्तु इसका लाभ बहुत है। इस क्रिया में कमर के नीचे के हिस्से शान्त पड़े रहते हैं। इस क्रिया में पाँव की नसें यथार्थ रूप से काम करने लगती हैं। जिन लोगों को कटि स्नायु बात या गृध्रसी का रोग हो, उन्हें इस क्रिया से पूरा लाभ हो जाता है। पग चालन क्रिया का विशेष प्रभाव छोटी-बड़ी आँतों पर तथा मूत्र-वाहक संस्थान पर पड़ता है। अतः इनकी बनावट व क्रिया के बारे में जान लेना आवश्यक है।

शोषण संस्थान

इसके अन्तर्गत मुँह, नाल, वक्ष, पाकाशय छोटी व बड़ी आंतें स्थूलांत्र का अन्तिम वक्रांश, मलांत्र क्लोम ग्रन्थ आदि आते हैं। यहाँ पर हम केवल छोटी व बड़ी आंतों के सम्बन्ध में बतायेंगे। शेष भागों के सम्बन्ध में अन्य क्रियाओं के वर्णन के विषय में लिखेंगे। आँतया अंतड़ी पाक-स्थलीके निचले भागों में रहती हैं। ये टेढ़े-मेढ़े नल हैं इन नलों ने कितनी बार घूमकर उदर गह्वर की बहुत-सी जगह घेर रखी है। आंतोंके दो भाग होते हैं—एक छोटी आंत व एक बड़ी आंत।

क्षुद्र अंत्र—छोटी आंत की लम्बाई २० फीट है। पाक-स्थली से गये हुए भुक्त पदार्थ का न पचा हुआ भाग इस छोटी आंत में प्रवेश करता है। पाचन के समय उस आंत में पित्त कोष से पित्त रस और क्लोम-ग्रन्थि से क्लोम रस आकर मिल जाता है। इस

आंत से एक प्रकार का रस निकलता है, उसे अम्ल रस कहते हैं। पाक-स्थली से न पचा हुआ अंश आंतों में आने के बाद इन तीनों रसों में ही पिसा करता है।

बृहत अंत्र—यह उदर के निम्न भाग से आरम्भ होती है, जिसे कोख कहते हैं और जिससे अंत्रपुट मिले हुए हैं। अधो क्षुद्रान्त्र का मुँह अंत्रपुट में खुलता है और उस स्थान पर एक कपाट रहता है, जिसको कालिक-वॅल्व कहते हैं। बड़ी आंत तीन भागों में विभक्त है—ऊर्ध्वगामी अंत्र भाग—यकृत के भीतर से होती हुई ऊपर जाती है। यहाँ से यह टेढ़ी होकर घूमती है, उसे अनुप्रस्त अंत्र-भाग कहते हैं। इस तरह ऊपरी तल पेट के पार करती हुई प्लीहा प्रदेश में घुस जाती है। यह नीचे की ओर झुकती है और इसका नाम पड़ता है। अधोगामी अंत्र भाग—इसका सबसे निचला भाग क्रमशः अधनिया वृहदंत्र और श्रेणिक वृहदंत्र कहलाता है। यह स्थान जहाँ बड़ी आंत झुकती है, वक्र भाग कहलाता है।

भोजन पहले मुँह से पेट में आता है। पेट में पाचन क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आंत में आता है। भोजन का पूरी तरह से पाचन छोटी आंत में ही होता है। छोटी आंत ही पचे हुए खाद्य से ही रस खींच लेती है और यह रस खून के दौरान में भेज दिया जाता है। भोजन का बचा खुचा अंश जो प्रायः रस निकल जाने के बाद शरीर के किसी काम का नहीं है, बड़ी आंत में आ जाता है। यदि कुछ रस बाहर रहा हो तो उसे बड़ी आंत सोख लेती हैं और तब उस बचे हुए अंश को बाहर निकाल देती है, यही अंश विष्टा (मल) है।

स्वाभाविक नियम है कि जो कुछ खाया जाय, अपने समय पर पचकर और शरीर को आवश्यक रस देकर मल रूप में शरीर से बाहर हो जावे, किन्तु दूषित पदार्थ खाने से, अनियमित जीने से तथा व्यायाम करने से भोजन का पूर्ण पाचन नहीं होता है और अनपचा भाग आंत में जमने लगता है। मल साफ नहीं होता है और कोष्ठबद्धता हो जाती है। अगर बड़ी आंत में यह बेकार पदार्थ अधिक दिन तक ठहरा रहे तो वहाँ सड़ने लगता है और उसके सड़ने के कारण अनेक विषैले कीटाणु उसमें पैदा हो जाते हैं। बड़ी आंत में बहुत सी छोटी-छोटी गिल्टियाँ हैं, जो रस को सोखती हैं। ये गिल्टियाँ आंत के अन्दर सड़ते हुए मल से जहरीले पदार्थ सोखकर खूनके दौरान में डाल देती हैं, इससे सारा शरीर जहर से भर जाता है और अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं। इसीसे कहा जाता है कि संसार में जितने भी रोग हैं, वे आंतों की खराबी से होते हैं।

आंतों की सफाई स्वाभाविक मल निकलने पर होती है, लेकिन भोजनको ठीक प्रकार से न चबाकर खानेसे तथा अखाद्य दूषित पदार्थों के सेवन से अपच तथा कब्ज हो जाता है। इसको दूर करने के लिए मनुष्य दवाओं का प्रयोग करता है अथवा जुलाब की गोली खाता है दवा में खुद कोई ताकत नहीं, जो पेटकी सफाई कर सके, वह तो शरीर के लिए विजातीय पदार्थ से जाता है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को सारी ताकत से बाहर निकालने का यत्न करता है। इसी कोशिकामें आंतसे चिपका हुआ मल भी बाहर हो जाता है। ये दवायें उत्तेजना और जलन पैदा करती हैं। बार-बार की जलन और उत्तेजना से आंतें कमजोर हो जाती हैं और अपना मामूली काम नहीं कर सकती हैं, जब

आंतों की शक्ति क्षीण हो जाती है तब न कोई दवा काम आती है न जुलाब की गोली।

आंतों में चिपके हुए मल को निकालने का एक ही उपाय है, और वह है कि गुदा के द्वारा पानी चढ़ाकर बड़ी आँत की नाली को धोना। आजकल डाक्टर लोग एनिमा द्वारा इसकी सफाई करते हैं। योगी जोगी लोग इसे वस्त्र क्रिया द्वारा करते हैं। आँतों में जल चढ़ाकर नौली साफ करने पर आँतों के सब विकार मिट जाते हैं और चिपका हुआ मल जल के साथ निकल जाता है। जिनकी आँतें खराब हो गयी हों और जिनको भयानक कोष्ठ बद्धता रहती हो उन्हें किसी योगी से वस्ति व नौली क्रिया सीखकर आँतों की सफाई कर डालनी चाहिए। इन क्रियाओं से आँतों की शक्ति भी बढ़ जाती है।

पग-चालन की क्रिया से भी आँतों पर प्रभाव पड़ता है। जब बार-बार ऐड़ी व अँगूठे को जमीन से लगाने के प्रयास में पैर को ही हिलाया जाता है तो पैर की नसों से लेकर छोटी व बड़ी आँतों तक खिचाव पैदा हो जाता है पाँवों के इधर-उधर हिलाने से आँतों पर एक बार तनाव पड़ता है और एक बार वे ढीली पड़ जाती हैं। बार-बार के तनाव ढीलेपन से आँतों की दीवाल पर चिपके मल छूट जाते हैं और वे साधारण मल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं जो इस क्रिया को नित्य नियम से करेंगे उनकी आंतों में कोई विकार नहीं आयेगा और भोजन साधारण और स्वाभाविक रूप से हजम होकर बेकार पदार्थ मल के रास्ते से निकल जायेगा।

पग-चालन क्रिया का दूसरा प्रभाव मूत्र-वाहक संस्थान पर भी पड़ता है। मूत्र निकालना दो ग्रन्थियों का काम है, जिन्हें मूत्र ग्रन्थियाँ वृक्क या गुर्दा कहते हैं जिस जगह पर पसलियों का अन्त होता है उसी जगह कटि प्रदेश में मूत्र ग्रन्थियाँ दोनों ओर रहती हैं, उसकी शक्ल गुठली की तरह है और उस पर एक आवरण रहता है इसके दोनों ओर से एक नली निकलती है जिसे मूत्र प्रणाली कहते हैं। यह मूत्र तैयार होते ही उसे मूत्रा-में पहुँचा देती है।

हमारे खाये-पीये का पतला भाग यकृत से होकर गुर्दों में आता है। उस पतले भाग में रक्त, नमक, शक्कर, प्रोटीन आदि अनेक मूल्यवान वस्तुएँ होती हैं, साथ ही पित्त का मैल तेजाब, मूत्राम्ल, गन्दा मैला पानी और सड़ी-गली मैलें आदि अनेक रद्दी और विषैली वस्तुयें होती हैं। गुर्दे का ये भाग फिल्टर व चलनी का काम देते हैं। उनका यह काम है कि वे मैले-विषैले अंश मिले हुए पानी को तो मूत्र बनाकर नलियों की राह मूत्राशय में भेज देते हैं और जो शरीर के काम आने वाले अंश होते हैं उन्हें यकृत को लौटा देते हैं। गुर्दों का यह काम रक्त को साफ करना भी है, ये रक्त के दूषित अंश को मूत्र में मिला देते हैं और शुद्ध अंश को रक्त की नलियों में दे देते हैं। गुर्दों का काम है कि हमारे शरीर से मल व विष को बाहर निकालते रहें। यदि वे एक दिन की भी हड़ताल कर दें तो हमारे लिए मृत्यु का कारण बन जायें। हमारे कुपथ्य व खाने-पीने की गड़बड़ी से गुर्दों का काम बहुत बढ़ जाता है, वह थकान से हैरान हो जाते हैं, जैसे किसी के गले में एक मन का लंगड़ डाल दिया जाय और उससे कहा जावे कि दिन भर काम करते जाओ और बोझ से भी लदे रहो अथवा एक इंजन जिसकी शक्ति चालीस गाड़ियां खींचने की हो उसके पीछे अस्सी गाड़ियाँ जोड़ दी जावें।

ऐसे ही जब गुर्दा पर कार्य भार अधिक बढ़ जाता है तो यह अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं करते। नतीजा यह होता है कि मल और विष की छनाई नहीं होती और मूत्र में भी अम्ल और बढ़ जाता है। कभी शक्कर ज्यादा आने लगती है और कभी अलब्यूमिन आने लगता है। जब रेत ज्यादा बनने लगती है तो पथरी पड़ जाती है। इस प्रकार गुर्दे की खराबी से अनेक रोग हो जाते हैं। गुर्दों में कभी-कभी ऐसा दर्द उठता है कि मनुष्य की जान ही ले लेता है। पग-चालन क्रिया से गुर्दों पर भी प्रभाव पड़ता है। पैरों को हिलाने से गुर्दों में उत्तेजना होती है और उनको शक्ति मिलती रहती है जिससे वह अपना काम सुचारू रूप से करने लगते हैं। पग-चालन क्रिया करने वाला साधक यदि अपने भोजन में असंयम न करे तो उसके गुर्दे सदैव शक्तिशाली बने रहेंगे और उसमें किसी रोग के होने की सम्भावना नहीं है। मूत्रवाहिनी नलियों से साधारण रोग तो इस क्रिया को थोड़े दिन करने के बाद आप ही आप अच्छे हो जाते हैं। पग-चालन क्रिया तो साधारण है, मगर इसका प्रभाव असाधारण है। यह हमारे महाप्रभुजी की देन है।

सदोपदेश

● श्री भोले बाबा

विश्वास से कर मित्रता, श्रद्धा सहेली ले बना।
प्रज्ञा तितिक्षा को बढ़ा, प्रिय न्यायका कर त्यागना ॥
गम्भीरता शुभ भावना, अरु धैर्य का सम्मान कर।
हैं आठ सच्चे मित्र ये, कल्याण कर भवपीर हर ॥

शिष्टाचार की ले शरण, आचार दुर्जन त्याग दे।
मन इन्द्रियाँ स्वाधीन कर, तज द्वेष दे, तज रागदे ॥
सुख शांति का यह मार्ग है, श्रुति संत कहते सभी।
दुर्जन दुराचारी नहीं पाते, अमर पद हैं सभी ॥

अभ्यास ऐसा कर सदा, पावन परम हो जाय रे।
कर सत्य पालन नित्य ही, नहि झूठ मनमें आयरे ॥
झूठे सदा रहते फँसे, माया नटी के जाल में।
तू सत्य भूमा प्राप्त कर, मत काल के आ गाल में ॥

है सत्य भूमा एक ही, मिथ्या सभी संसार रे।
तल्लीन भूमा माँहि हो, कर तात ! निज उद्धार रे ॥
कर निज मुख्य कर्त्तव्य तू, स्वाराज्य भूमा प्राप्त कर।
मत यक्ष राक्षस पूजने में, दिव्य देह समाप्त कर ॥

● श्री विष्णुप्रसाद व्यास

श्रद्धांजलि

श्री श्री १००८ ब्रह्मलीन योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के चरण कमलों में :—

हमारे सद्गुरुदेव एक उच्चकोटि के महापुरुष, पूर्ण तत्ववेत्ता, मर्यादाओं के नायक, करुणावतार, प्रेमभक्ति के अतुल भण्डार और वीर कर्मयोगी अवतारी विभूति थे।

आपने भारत में वह आदर्श स्थापित किया जिसका और उदाहरण नहीं मिलता। वैसे तो गुरु शब्द की महिमा अवर्णनीय है, किन्तु आपकी महिमा का कोई कहाँ तक वर्णन करे। साधन-अभ्यास, जीवन तत्व के साथ-साथ निष्काम कर्मयोग के अमृत रस का पान कराना आपके जीवन का विशेष आदर्श था। जन-साधारण के जीवन-स्तर को दैहिक तथा आत्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाना आपका ध्येय था।

आपने योग-प्रचार हेतु अवतार लिया था उसे परिपूर्ण किया। आपकी दूरदर्शिता तथा अगणित उपकारोंके लिए समस्त शिष्य-गण युग-युग तक आपके ऋणी रहेंगे।

आपने युग की नाड़ी को आत्मिक वैद्य बनकर पहचाना। आपने इस माया लिप्त युग में जन-साधारण में योग की ज्योति भरने के लिए अनेक कठिनाइयों को सहन किया। आपने जिस प्रकार से तप में अपने कोमल मन पर सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि ऋतुओं को सम समझकर व्यतीत किया, उसकी उपमा मिलना कठिन है। आपका जीवन खिले हुए फूल की भाँति योग-प्रचारकी सुगन्ध फैलाता हुआ अशान्त हृदयों को शान्ति तथा आनन्द प्रदान करता था। अत्यधिक तपस्या करने से आप में वह लोकोत्तर तेज परि-व्याप्त हो चुका था। आपके दर्शन मात्र से ही सांसारिक-जीव का मन निर्मल हो जाता था। आपका तेजोमय स्वरूप, गौर बदन, विशाल ललाट मुस्कराता हुआ मुखमण्डल सूर्यवत् देदीप्यमान था। आपको देखकर कोई भी मन्त्रमुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। आपकी वाणी में इतनी मधुरता तथा ओज था कि जो भी आपके प्रवचनों को श्रवण करता उसका हृदय एक दिव्य मस्ती में झूम उठता था।

आप नीति-निधान तथा धर्ममर्यादाओं के संस्थापक थे। आपने गुरुदीक्षा देकर अपने शक्तिपात द्वारा गुरुदीक्षा प्रणाली की परम्परा को सुदृढ़ किया था। आप अनेक सिद्धियों के स्वामी थे। आवश्यकता के अनुसार आपने कुछ सिद्धियों को दिखाया भी तो गुप्त रूप से।

आपका हृदय गंगा-यमुना सम निर्मल आकाश-सा विराट और समुद्र-सा परम गम्भीर था, उसमें संकीर्णता नहीं थी। आप सबसे प्रेम से मिलते थे आप अपने आपको छिपाकर अत्यन्त नम्रता और सरलता ग्रहण किये रहते थे। आप सदा शान्त और

ब्रह्मत्व की स्थिति में रहे। आपके किन-किन गुणों का वर्णन किया जाय आप अवर्णनीय और निर्वचनीय थे।

आपने जन-जन के हृदय में वैराग्य, त्याग और परमार्थ तथा कर्मयोग की वह सुगन्धित पवन भरदी जिससे प्रत्येक गुरुभक्ति के अभिलाषी का जीवन सफल हो गया। भंवरे से पूछिये उसे फूलों से क्या रस मिला है, वह अपनी मस्ती में फूल के मकरन्द को पीने में मस्त है उसे क्या परवाह किसी की कि किसी को कुछ बताये, वह तो मस्ती में इतना लीन है कि पुष्प के बन्द हो जाने की उसे खबर ही नहीं। पतंगे से पूछिये कि शमा पर मर मिटने का क्या आनन्द है?

वह जिसे रस का आनन्द आ गया वह बताये कैसे? उसे समय कहाँ है बताने के लिए। वह मधुर अमृत जो आपसे मिला, जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं।

आपने शिष्यों को ऐसी अमूल्य निधि दी है, जिसको पाकर संसार की झिलमिलाती माया उन्हें धूल दिखाई देती है।

मेरी तो बुद्धि असमंजस में पड़ जाती है कि आपको द्वापर के लीलाधारी श्रीकृष्णचन्द्र कहूँ या साधनलीन बुद्ध कहूँ, अथवा परमार्थ पथ का दिनकर। कुछ समझ में नहीं आता, क्या उपमा दूँ।

आपने समझाया कि हठयोग, क्रियायोग, साधनयोग तथा कर्मकाण्ड की गुत्थियों में उलझे रहने से जीवन निरुद्देश्य या लाभ रहित बनकर रह जाता है। आपने सुरत-शब्दयोग अथवा राजयोग को सर्वोत्तम योग बतलाया, जिससे जीवन को पूर्णरूप से सफल कहा जा सकता है। आपने गीता के निम्न उपदेश को आवश्यक बताया।

हे अर्जुन! न तो बहुत खाने वाले को योगसिद्ध होता है, नहीं बिल्कुल न खाने-वाले को। न अति शयन करने वाले को, नहीं अत्यन्त जागने वाले को योग सिद्ध होता है। प्रत्युत दुःखों व क्लेशों को हरने वाला योग तो यथा योग्य आहार करने वाले का यथा योग्य जागने और शयन करने वाले को ही सिद्ध होता है।

आपकी वाणी में ऐसा जादू था कि एक प्रवचनसे सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते और दूसरे ही दिन दीक्षा लेने वालों का तांता लग जाताथा जो एक बारभी आपकी ओर आकृष्ट हुआ, वह तार से बंधी हुई कठपुतलीके समान खिचा चला आता था। आपमें सर्व हृदय-विजयी चुम्बकीय आकर्षण शक्ति (Magnetic Power) मलय पवन सी सुगन्धि भर देने का गुण था। स्वयं पारस सम कायापलटनेका गुण विद्यमान था। जैसे मलयागिरिपर आबनूस सागोन, चीड़ आदि वृक्ष होते हैं। जब वायु चलती है तो आस-पास के सभी वृक्ष उसकी सुगन्ध से चन्दन रूप बन जाते हैं। सबमें ही चन्दन की सुगन्ध आने लगती है और उस चन्दन के भाव वह लकड़ी भी बिकना आरम्भ हो जाती है। उस एक वृक्ष (गुरुजी) ने सब वृक्षों (शिष्यों) में वह सुगन्ध भर दी तो सम्पूर्ण मलयागिर (सिद्धगुफा) के शुभ नाम से सम्बोधित हो गया।

आपके पावन व्यक्तित्व में यही विशेष गुण था कि अवगुणों, बुराइयों, पापों तथा विषय-वासना युक्त जीव जब आपकी पावन कल्याणकारी मनोहारी छवि को निहारने के लिए आते तो मलय समीर की तरह आपकी पवित्रता सदाचार तथा महानता से प्रभावित होकर थोड़े समय में ही योग की ओर मुड़ जाते थे।

आप अनन्त थे, सर्वज्ञ अन्तर्यामी, हृदय सम्राट नयनाभिराम, जीवन धन न जाने क्या-क्या थे। कुछ समझ में नहीं आता, कभी गिरधारी बनकर लीला करते, कभी गुप्त रूप धारण कर उपासना व जीवनतत्व करवाते, कभी माता-पिता बनकर दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं प्रबंधक बन जाते तो कभी आत्म-ज्ञान के आन्तरिक मार्ग का उपदेश देकर योगीश्वर बन जाते। इसका विस्तार समुद्र को नापने की तरह बताना कठिन है।

आप दयालुता, स्नेह कृपा एवं महानता के प्रताप से हजारों व लाखों मानव हृदयों पर शासन करते थे और करते रहेंगे। युग भले ही पलट जाय आपके प्रेम की अमिट छाप शिष्यों के हृदय से कभी नहीं मिट सकती।

हम यह जानते हैं जो नश्वर है उसी का नाश हुआ है। हमारा प्रेम विनाशी देह से नहीं था, हमारे गुरुदेव तो अविनाशी हैं, उनकी मृत्यु सम्भव नहीं शिष्य के लिए ऐसी भावना होना निश्चय ही उसके उन्नति का द्योतक है।

श्री पूज्य गुरुदेव का भौतिक शरीर इस संसार में नहीं है। लेकिन श्री गुरुदेव की आत्मा विकसित शिष्यों के हृदयों में हमेशा रहेगी, वह शिष्यों के प्रत्यक्ष जीवन स्वप्न और विचारों के क्षेत्र में हमेशा मार्ग-दर्शन देती रहेगी।

मेरा विश्वास है कि ब्रह्मलीन श्री गुरुदेव हमेशा सिद्धगुफा आश्रम में ही रहेंगे, और अपने प्यारे बच्चों पर कृपा बरसाते रहेंगे। हमारा कर्त्तव्य है कि जो-जो कार्य पूज्य गुरुजीने बताये हैं या आदेश दिए हैं उन्हें हम करते रहें, नाम-मन्त्र का जप अवश्य करते रहें और अपने आश्रम की सेवा दुगनी ताकत यानी तन-मन-धन से करते रहें, यही उनके लिए हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हे ! योगिराज जी,

आप दया करके युग-युग में मनोहारी दिव्य स्वरूप में आते रहिये और हम युग-युगान्तरों तक आपके श्री सुभग चरणकमलों की शरण में बने रहें।

हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा भक्ति सहित ब्रह्मलीन श्री चन्द्रमोहन जी महाराज आपके श्री चरणों में हमारा यह जीवन अर्पित है।

- काम, क्रोध आदि विकार आत्म ज्ञान को ढंकते हैं, मगर उनमें भी सबसे घातक विकार तो ईर्ष्या और मत्सर ही हैं। भगवान् कहते हैं कि लोग अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध से युक्त होकर ईर्ष्या और मत्सर के कारण ही अपनी देह और दूसरों की देह में स्थित परमात्मा का द्वेष ही करते हैं। ईशा वास्य उपनिषद् में इसे आत्मा का हनन करने वाली वृत्ति कहा है।

श्री गुरुदेवजी

का

अनुपम व्यक्तित्व

हमारे पूज्यपाद गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का व्यक्तित्व अनुपम था। जो साधुता, सरलता और विद्वता उनके जीवनमें समाई हुई थी वैसी उपमा हमें अपने जीवनमें अन्यत्र देखने में नहीं आई। वे सार्वदेशिक ख्याति के सिद्धयोगी थे, आश्रमवासी हम सभी शिष्यों और ब्रह्मचारियों के सच्चे मार्गदर्शक, प्रतिपालक और संरक्षक थे। देवत्व के सभी सद्‌गुणों का दर्शन हमें उनके क्षण-क्षण के आचार और व्यवहार में देखने को मिलता रहा। सर्वदा प्रसन्न चित्त रहना और अपने सम्पर्क में आने वाले सभी साधकों, शिष्यों और योग-प्रेमियों को वे प्रसन्न व आनन्दित रखने की कला उनमें स्वभाविक रूप से विद्यमान थी। क्रोध, लोभ, मोह आदि जैसे विकार उन्हें छू नहीं पाते थे। संसार से उनका सहसा चला जाना उनके अनासक्त योग का ऊँचा उदाहरण ही कहा जा सकता है। सिद्धयोगी संसार के पाप-ताप से पीड़ित लोगों के कल्याण के लिए ही योग मार्ग का दर्शन और प्रशिक्षण देने के लिए अपना प्राकट्य किया करते हैं। हमारे श्री गुरुदेवजी इसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस धरती पर आते थे और जीवनके अन्तिम क्षणों तक वे इसी योग धर्मके प्रचार और प्रसारमें लगे रहे।

हम सब आश्रमवासी जुलाई के प्रथम सप्ताह में उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी प्रतीक्षा की वे घड़ियां नहीं आयी लेकिन उनके आने से पहले ही उनका पार्थिव शरीर उनकी शिष्या गुरु बहिन डा० उमा शर्मा कतिपय अन्य ब्रह्मचारियों के साथ सहसा आश्रम पर आ पहुँचा जिसे देखकर हम सब स्तम्भित और आश्चर्य चकित रह गए। प्रभु की इच्छा यही थी। ऐसा जानकर अश्रुपूर्ण नेत्रों और भरे हुए हृदय से हम सबने अपनी प्रणयाञ्जलि उन्हें अर्पित की। उनकी महिमा में और अधिक कहने के लिए हम सब अपने को अशक्त और असमर्थ ही पाते हैं।

ब्रह्मलीन हुई उनकी महान् आत्मा हमें कर्तव्य पालन की प्रेरणा देती रहेगी ऐसा हम सबका विश्वास है।

ब्र० सत्येन्द्र   ब्र० दादा केशवदेव   ब्र० कृष्णकान्त वाजपेयी
ब्र० रामाश्रय   ब्र० आनन्द सिंघल   ब्र० टी० एस० फक्कड़

● श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

दिव्यावतार श्री गुरुदेवजी

देश के कोने-कोने में योग का डण्का बजाने वाले, सिद्धयोग के दाता, जन-जन के कल्याणकारी, हम सबकी आत्मा एवं हमारे भाग्यविधाता योगावतार श्रीगुरुदेवजी अपनी इहलोक-लीला समाप्त करके परमधाम के वासी बन गये हैं, यह हम सबका दुर्भाग्य है। श्री गुरुदेवजी का सम्पूर्ण जीवन परम तपोमय रहा है। वे दया, त्याग, तपस्या एवं भक्त-वत्सलता की साक्षात् मूर्ति थे। अपने बालकों का साधारण-सा कष्ट भी उनसे देखा नहीं जाता था। किसी भी मनुष्य को कष्ट में पड़ा देख उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता था। क्रोध उनको छू तक नहीं सकता था। वे भगवान सदाशिव के समान सरल एवं दयालु, श्रीराम के समान गम्भीर एवं मर्यादापालक तथा श्रीकृष्ण के समान सम-दर्शी एवं अद्भुत लीलाधारी थे। वस्तुतः वे श्रीकृष्ण के साक्षात् अवतार ही थे। श्रीकृष्ण को आदर्श मानकर वे स्वयं जीवन-भर कर्म-योगी बने रहे एवं हम सबको कर्त्तव्यपरायण बनने की प्रेरणा देते रहे, वे एक आदर्श गुरु-भक्त थे।

गीता के दिव्य सन्देश को तथा महर्षि पतंजलिजी के योग-दर्शन एवं उस पर श्री व्यासदेव जी महाराज द्वारा रचित व्यास-भाष्य को माध्यम बनाकर उन्होंने योगविद्या के गूढ़तम रहस्यों को जन-साधारण के सामने उजागर किया। जिस प्रकार लुप्त प्रायः योग-विद्या को द्वापर युगमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन के समक्ष प्रकट किया था, ठीक उसी प्रकार इस घोर कलिकाल में लक्ष्यहीन मानव-जीवन को सही दिशा प्रदान करने के लिए श्रीगुरुदेव जी ने पवित्र योग-विद्या के गुप्त रहस्यों को प्रकाशित किया। वे देशके एक कोने से दूसरे कोने तक चलकर अपने सारगर्भित एवं हृदय-ग्राही प्रवचनों द्वारा लोगों को योग-विद्या का महत्व समझाते रहे तथा शक्तिपात दीक्षा द्वारा सुपात्र साधकों को आत्म-साक्षात्कार कराते रहे। वे अपने मधुर सम्भाषण, दृष्टि-पात तथा कर-स्पर्श के द्वारा शक्तिपात करके अपने शरणागत बालकों के सभी सङ्कट हर लिया करते थे। कोई भी व्यक्ति वह चाहे कितना ही दुःखी क्यों न हो, वह श्रीगुरुदेव जी के दर्शन मात्र से ही अपार शान्ति का अनुभव करता था।

मुझे वह प्रसंग प्रायः याद आया करता है, जब कुछ वर्ष पूर्व योग-साधन आश्रम ऋषि-केश के वार्षिक उत्सव के अवसर पर गुरुदेव-जी अपने आसन पर विराजमान थे। कुछ भक्त उनके सामने बैठे हुए थे। मैं भी वहीं उपस्थित था। इस बीच कहीं दूर से दो व्यक्ति आकर उनके सामने उपस्थित हुए और हाथ जोड़कर निवेदन किया-महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि सिद्ध पुरुष की क्या पहचान है और उन योगियों की क्या पहचान है, जिनकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो गई हो? क्या आपके दरबारमें भी उनके दर्शन कर पायेंगे?

गुरुदेवजी उनकी ओर देखकर मुस्कराये और मधुर एवं गम्भीर वाणी में बोले--

बता तो हम दें, पर तुम देखोगे कैसे ? उन्हें देखने के लिए तो अन्दरूनी आँखों की आवश्यकता रहती है और वह मिलेगी स्वाध्याय से । इसके आगे गुरुदेव बोले—

'सिद्ध पुरुषों की पहचान हम अपनी इन आँखों से नहीं कर सकते । वे अपनी पहचान स्वयं ही करा दिया करते हैं । उनके पास जाने से शान्ति मिलती है, सन्तोष मिलता है, आह्लाद मिलता है, उत्साह मिलता है एवं सात्विक वृत्तियों का उदय होता है । इतना कहकर गुरुदेवजी मौन हो गये ।' उस समय लाड़वा वाली बहिन शान्तीदेवीजी दरबार के अन्दर ध्यानस्थ थीं । उनके प्राण-कोष ऊपर चढ़े हुए थे और आँखों की पुतलियाँ उलट गई थीं । गुरुदेवजी ने उन्हें पुकारा । दूसरे ही क्षण शान्ती बहिन मेंढक की भांति उछलती हुई उनके सम्मुख उप-स्थित हो गयीं । उनका आसन पूर्ववत् लगा रहा । उन्होंने श्री गुरुदेवजी के चरणों में प्रणाम किया और पत्थर की मूर्ति की तरह सामने बैठी रहीं । उनकी ओर संकेत करते हुए श्री गुरुदेवजी ने नवागन्तुकों से कहा—'इस देवी की आँखों को देखो, इसकी आकृति को देखो, क्या तुम्हें इसमें कुछ विशेषता नजर आती है ?' इतना कहकर वे वहाँ से उठकर चले गये ।

बहिनजी की दुबारा भस्त्रिका चली और वे उसी स्थिति में दादुरी वृत्ति से उछलती हुई पुनः दरबार में प्रविष्ट हो गयीं ।

श्री गुरुदेवजी परिपूर्ण सिद्ध पुरुष थे । वे सिद्ध ही नहीं, बल्कि सिद्धों के भी आराध्य थे । इतना होते हुए भी वे सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार किया करते थे । वे अत्यन्त सावधानीपूर्वक अपने आपको छिपाये रखने की चेष्टा किया करते थे, ताकि कोई उन्हें पहचान न सके । उनके भक्तों के साथ समय-समय पर अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएं घटित होती रहीं, बड़ी-बड़ी कृपाएं हुईं और जब कभी उनसे ऐसी कोई चर्चा करता तो वे अनजान बन जाते थे । अपनी उन कृपाओं के लिए वे दूसरे लोगों को या अपने गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज को श्रेय भाजन बना देते थे । वे स्वयं कष्ट पाकर अपने शिष्यों के रोगों का भुगतान अपने शरीर पर कर लिया करते थे । मरणा-सन्न अपने बालकों को जीवन दान देकर वे डाक्टरों का मान बढ़ा दिया करते थे ।

वे सबका मान करते थे, किन्तु स्वयं मान की आकांक्षा नहीं रखते थे । अपने गुरु-भाइयों एवं गुरु-बहिनों का अत्यधिक आदर करते थे । विद्वानों, ब्राह्मणों एवं साधुओं का विशेष रूप से सम्मान किया करते थे ।

वस्तुतः वे गुणों के सागर थे, उनके गुणों का बखान करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है, फिर मैं अल्प-बुद्धि उनके दिव्य गुणों का भला क्या वर्णन कर सकता हूँ ।

आज उनका स्थूल शरीर न रहने से उनके लाखों बालक अपनेको सर्वथा असहाय एवं अनाथ अनुभव कर रहे हैं । उनके सशरीर यहाँ न रहनेसे हमारी ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता की जो महान क्षति हुई है । उसकी पूर्ति अब किसी प्रकार भी नहीं हो सकती । फिर भी उनके दिव्य एवं अमर सन्देश सदैव हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे एवं उनका उज्ज्वल चरित्र हमारे लिए प्रेरणा-स्रोत बना रहेगा ।

मैं अपने गुरुदेवजी के दिव्य गुणों को स्मरण करता हुआ टूटे-फूटे इन शब्दोंसे उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ ।

(● शेष पृष्ठ ३१ पर)

● पं० भोजदत्त शर्मा, आर्योपदेशक

त्वमेव सर्वं मम देवदेवः

देश के ही नहीं, किन्तु विदेशों के भी योग-साधकों में जो अपने व्यक्तित्व का विशेष स्थान बना चुके थे साथ ही उत्तर भारत में जो अपनी योगिक साधना का अनुपम और बहुचर्चित क्षेत्र बनाये हुए थे, वे हमारे पूज्यपाद गुरुदेवजी अब हमारे बीच में नहीं रहे हैं। यह एक ऐसा हृदय विदीर्ण करने वाला समाचार रहा है जिसे भुलानेका प्रयत्न करने पर भी कभी भुलाया नहीं जा सकता।

'सवाई आश्रम' में उनके आने के कुछ वर्ष बाद ही मेरा उनसे सम्पर्क स्थापित हुआ था, उनकी विद्वता, स्वभाव की सरलता और करुणा से भरे हुए उनके उल्लेखनीय व्यवहार के कारण मैं शनैः शनैः उनका और उनके आश्रम का निकटतम् आत्मीय-जन बन गया था। आश्रम में आयोजित होने वाले सभी वार्षिक, षट्मासिक और त्रैमासिक समारोहों में ऐसा कोई भी अवसर मुझे याद नहीं आता जब मुझे उन्होंने उनमें स्नेह और आदर के साथ बुलाया न हो। मैं निरन्तर उनकी आज्ञानुसार सभी समारोहों में समय से पूर्व ही पहुंचकर यथायोग्य अपना सहयोग प्रदान करता रहा हूँ। उनके आचरण में सद्गुणों का जो भण्डार मुझे देखने को मिला, उसका वर्णन करना सहज सम्भव नहीं है। केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि वे मेरे व मेरे परिवार तथा मेरे अनगिन मित्रों के माता-पिता, सखा-सनेही और सर्वस्व थे। उनके बारे में यह श्लोक लिख देना ही ठीक समझता हूँ कि—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेवः॥

(● पृष्ठ ३० का शेष)

साथ ही यह अनुभव कर रहा हूँ कि उनके प्रति वास्तविक श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके पवित्र आदेशों का पालन करते हुए अपने जीवन को योगमय बना लें और अपना आत्मोत्थान करें तथा दूसरों के कल्याण में भी सहायक बनें। गुरुदेवजी हमसे जो अपेक्षायें रखते थे और जैसा वे हमें बनाना चाहते थे, वैसा बनने की चेष्टा करें। हमारा यहभी कर्त्तव्य बनता है कि हम श्री गुरुदेवजी द्वारा अभिलषित उन सभी अधूरे कार्यों को पूरा करने का प्रयत्न करें, जिन्हें वे अपने जीवनकाल में पूरा नहीं कर पाये। हम उनके समान ही आदर्श गुरु-भक्त बनकर उनके द्वारा चलाये गये योग-प्रचार अभियान को आगे चलाते रहें। उनके दिव्य गुणों को अपनाकर उनके पवित्र पद-चिह्नों पर चलते रहना ही हमारा परम धर्म है।

सिद्ध पुरुष आप्तकाम होते हैं, कृतार्थ होते हैं, उनके लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं होता। फिर भी वे दूसरों को शिक्षा देने के लिए कर्त्तव्यरत रहते हैं, श्री गुरुदेवजी का यही लक्ष्य था, अतः उनके आदर्शों पर चलना ही कल्याण का एकमात्र साधन है।

यदि हम ऐसा करने की चेष्टा करेंगे तो हमें गुरुदेवजी का मार्ग-दर्शन सदैव प्राप्त होता रहेगा और वे पग-पग पर सहायक बने रहेंगे। ब्रह्मलीन होते हुए भी वे हमारे साथ हैं और सदैव हमारे साथ रहेंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

हे मेरे प्राणाधार! मेरे परम आराध्य! सिद्धेश्वर, योगेश्वर श्री गुरुदेवजी! आप अपने इस अबोध बालक का कोटिशः प्रणाम एवं हार्दिक श्रद्धांजलि स्वीकार करें। ●

● वैद्य श्री रामधन शास्त्री

हमारे गुरुदेव का ध्येय रहा—

योग-धर्म का व्यापक प्रचार

परम श्रद्धेय परम पूजनीय श्री गुरुदेव जी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज आज हमारे बीच में नहीं रहे अतः हम सभी गुरु भाई मिलकर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। श्री गुरुदेवजी सद्गुरुदेव प्रभु रामलाल जी के शरीर छोड़ने के उपरान्त तीन साल बाद सिद्धगुफा सवाई आश्रम में पधारे और उनके चरण कमल यहाँ रखने के उपरान्त ही इस आश्रम प्रादुर्भाव हुआ। इसमें कोई संकोचवाली बात नहीं है कि उन्होंने पहले इसमें आकर एक झोंपड़ी डाली और रहने लग गये। धीरे-धीरे योग का प्रचार प्रारम्भ हुआ। सवाई गाँव वाले यहां आकर कुछ लोग गुरुजी का मजाक उड़ाया करते थे। कारण कि उनको यह पता नहीं था कि यह कितने शक्तिशाली सन्त हैं। फिर कुछ ही दिन बाद टाट वाले योगी बाबा रघुनन्दन जी ने आकर दीक्षा लेली और उन्होंने गुफा में बैठकर उग्र तप आरम्भ किया। उनकी ध्यान स्थिति अतीव ऊँची होती गई। उसके उपरान्त गुरुवर प्रभुजी ने योग का प्रचार बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। जो भी कार्य गुरुजी करते थे वह प्रभुजी की आज्ञानुसार ही करते थे। कई बार तो यहां तक कहते थे कि प्रभुजी निवृत्ति मार्ग की आज्ञा नहीं देते हैं प्रवृत्ति मार्ग की आज्ञा देते हैं। यदि प्रभुजी निवृत्ति मार्ग की आज्ञा दे दें तो हम एक हजार वर्ष तक एक अंगूठे के सहारे खड़े रह कर तप करने की सामर्थ रखते हैं।

कई बार यह भी वे कहा करते थे कि जैसे पतीली में कलछी होती है और वह पतीली में से ही लेकर सबके आगे शाक डालती है उसी तरह हम तो अपने महाप्रभु की कलछी हैं प्रभुजी की पतीली में से ही शाक डालने के लिए ही हम आये हैं। उन्होंने कभी भी अहङ्कार वाली बात नहीं कही। वे सदैव निर्भय होकर प्रवचन किया करते थे। गुरुजी ने थोड़े ही दिनों में योग का भण्डार इतना खोल दिया कि लाखों की संख्या में मनुष्य उनसे दीक्षित हो गये और ध्यान स्थिति भी उनकी भावनानुसार सधने लग गई।

गुरुजी की यह अपनी विशेषता थी कि चाहे छोटा हो या बड़ा, धनवान हो या दीन सबसे एकसा ही प्यार करते थे। किसी को छोटा-बड़ा नहीं समझते थे। हमें यह भी याद आता रहेगा कि अब उस प्रकार से कौन हमें प्यार करेगा ?

भगवान गुरुदेव कभी किसी का बुरा नहीं चाहते थे वे तो सबका भला ही भला चाहते रहे क्योंकि भगवान श्री की यह मान्यता थी कि भगवान सदैव भले कर्मों का फल देते हैं। कहा भी है—

चन्द्रश्चाण्डाल वेश्मनि।

चन्द्रमा सबके घर में प्रकाश करता है चाहे धर्मात्मा हो या चाण्डाल किसी के घर से रोशनी नहीं हटाते उसके लिये सभी एकसार होते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है, कि जब-जब भी धर्मकी हानि होती है तभी मैं अवतार लेकर भूमि का भार उतारता हूँ। थोड़ा पाप भूमिपर होता है, तब इस पृथ्वीपर प्रभु महान आत्माओं को भेजते हैं। वे महान आत्मायें यहां भूमि पर आकर मनुष्यों का उद्धार करने के लिए धर्म का प्रचार-योग का प्रचार किया करते हैं। जिस मनुष्य को ये दीक्षित कर देते हैं अर्थात् दीक्षा की मोहर लगा देते हैं तो वह मनुष्य नरक में नहीं जाता। जैसे चिट्ठी पर पता ठीक लिखने पर और डाक की मोहर लगने वह पत्र अवश्य ही उस आदमी के पास पहुँच जाता है चाहे कुछ देर भले ही लगे। इसी प्रकार जिस मनुष्य पर दीक्षा की मोहर लग गई है वह चाहे योग भ्रष्ट भी हो तब भी वह नरक में नहीं जायगा स्वर्ग लोक में ही जायेगा।

क्षीणे पुन्ये मृत्यु लोके विशन्ति

वह पुण्य क्षीण होने पर फिर मृत्यु लोक में आ जाता है। या किसी योगी के घर में या किसी धनवान के घर में जन्म ले लेता है। उसके विचार धार्मिक होने के कारण वह फिर भक्तियोग करके प्रभु लोक को चला जायेगा। क्योंकि आवागवन का ही यह संसार है।

परिवर्तिनिसंसारे मृत कोवा न जायते।

यह तो परिवर्तनशील है इसमें कौन मरता नहीं कौन जन्मता नहीं। पर यह तो उनकी बात है जो सुकृत नहीं करते।

भगवान कृष्ण योग-योगेश्वर थे पर उन्होंने भी अपने शरीर का परित्याग किया। संसार को लीलायें दिखाई और काय-निर्माण शरीर को त्याग दिया। परन्तु भूमि का भार उतारने के उपरान्त। इसी प्रकार सन्त महात्मा साधु संन्यासी भी शरीर छोड़ देते है। परन्तु योगीजन अपनी इच्छानुसार ही शरीर को त्यागते है। हमारे गुरुदेवजी ने जिस चमत्कारिक ढंग से शरीर छोड़ा है उसके रहस्य को हम नहीं समझ सकते। क्योंकि उनके मन में रुद्राभिषेक करवाने का विचार पक्का था। उन्होंने रुद्राभिषेक नहीं करवाया एक क्षण में ही शरीर को छोड़ दिया। उनकी इच्छा ही ऐसी बन गई थी। बहानेवाजी तो अनेक होती है। कुछ न कुछ माध्यम तो अवश्य ही भगवान बनाते है। कृष्ण भगवान जब गो लोक को जाने लगे तब उन्होंने भी अपना माध्यम एक व्याध का बनाया। यह नहीं कि कृष्ण भगवान स्वयं ही गोलोक वास की इच्छा रखते थे। अतएव कोई न कोई बहाना या माध्यम होता ही है क्योंकि जाना सभी को है। सदा न कोई रहा है, न रहेगा। हमारे प्रभुजी भी इस भौतिक शरीर को त्यागकर परमधाम चले गये। परन्तु उनकी जो आत्मशक्ति है वह तो सर्वदा आश्रम में रहेगी ही। हर एक प्रभुजी के बच्चे को यह समझ लेना चाहिये कि हमारे पूज्यपाद गुरुजी यहीं है अन्तर दृष्टि से देखिये। शरीर छोड़ने के बाद भी क्या-क्या लीलायें वे दिखा रहे है। यह विचारणीय है। हम उनके गुणों को उनके चरित्रों को उनके प्यार को कभी नहीं भूल सकेंगे। परन्तु उनका भौतिक शरीर अब हमारे सामने नहीं है अतएव सभी गुरु-भाई-बहन मिलकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और याचना करते हैं कि वे प्रभु हमारे ऊपर सदैव अनुकम्पा करते रहें तथा हमारे को शक्ति निमित्त समर्थ बनाये रहें हमारी सबकी यही हार्दिक इच्छा है। जिस प्रकार से इस आश्रम का कार्य भार सब भाई बहन अपने हाथों में सम्भाले हुए थे, वे आगे भी पूर्ववतः उसी प्रकार आश्रम का संचालन करते रहें।

सर्वोच्च साधना

● उपनिषद् बोध

हृदयेन हि सत्यम् जानाति ।

सचमुच मनुष्य सत्य को जानता है, पहचानता है हृदय के द्वारा ।

हृदय के मानी हैं भावना । भावना का विकास, भावना का असर, सबसे पहले सीने के अन्दर जह का जो खजाना होता है, उस पर प्रतीत होता है । इसलिए लोग मानते हैं कि भावना का उद्गम वहीं से है, जहाँ से विचार और बुद्धिका व्यापार चलता है यानी मस्तिष्क में; लेकिन चूँकि भावना का असर सीने पर होता है, इसीलिए उसी का नाम लिया जाता है ।

ऋषि का कहना है कि सत्य का ज्ञान बुद्धि के द्वारा नहीं होता, बल्कि भावना के द्वारा होता है ।

जब कोई विज्ञान-शास्त्री प्रयोगशाला में बैठकर ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयोग करता है, तब उसे बुद्धि के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह ज्ञान केवल जानकारी है ।

सत्य उससे बढ़-चढ़कर है । सत्य है जीवन का रहस्य, उसकी प्राप्ति हृदय के विकास के बिना भावना की शुद्धि और उत्कटता के बिना हो नहीं सकती ।

लोग भावना का स्वरूप सोचते नहीं । भावना और वासना का भेद ध्यान में नहीं लेते । जब कोई मित्र अपने दोस्त से कहता है, "भावनावश होकर बातें मत करो," तब सचमुच उसका कहना होता है, "वासनावश होकर बातें मत करो ।"

जब इन्द्रियाँ अपने विषयकी ओर दौड़ती हैं और मनुष्य उन्हीं की प्रेरणा के वश होता है, तब उसको न विशुद्ध ज्ञान होता है न उसका निर्णय शुद्ध रहता है ।

अहं और मम की एकांगिता जब मनुष्य पर सवार होती है तब भी उसे शुद्ध ज्ञान नहीं होता । जब मनुष्य अपने विचार में अपने को ही केन्द्र में रखता है, अपनी लाभ-हानि, अपना स्वार्थ, अपनी प्रतिष्ठाको ही प्रधानता देता है, तब उसके अनुमान शुद्ध नहीं होते । यह भी वासनावशता ही है ।

जब ज्योतिषी मानते थे कि पृथ्वी के इर्द-गिर्द सूरज घूमता है तब उनका गणित और उनके अनुमान सब गलत होते थे । जब उन्होंने पाया कि सूरज ही केन्द्र है, जिसके इर्द-गिर्द पृथ्वी आदि सब ग्रह घूमते हैं तब सारा ज्योतिषशास्त्र सही और सरल हो गया । वाल्ट विटमैन कवि के बारे में किसी ने जो कुछ कहा है उसे तो जाने दीजिये । एक मिशनरी ने कहा कि पृथ्वी ही इस विश्व का केन्द्र हो सकती है । इसका कारण उसने बताया कि भगवान का पुत्र ईसामसीह का जन्म जहाँ हुआ, वही भूगोल विश्वका केन्द्र हो सकता है, उसी तरह से सोचने वाले को लोग कहते हैं कि वह भावनावश होकर सोच रहा है । सच देखा जाय तो यह भावनावशता नहीं है, यह है वासनावशता या अहंकारमूलक एकांगिता ।

भावना तो जीवन का सार-सर्वस्व है । भावना का रूप समझना चाहिए ।

विश्वात्मैक्य, सत्यनिष्ठा, आत्मपरायणता, श्रद्धा, मांगल्य के ऊपर विश्वास, अमृत-तत्वों के ऊपर विश्वास, ये सब भावनाके प्रकार हैं । इन्हीं के द्वारा जीवन का रहस्य पाया जाता है, इसलिए ऋषि कहते हैं–'हृदयेन हि सत्यम् जानाति ।' आगे जाकर ऋषि कहते हैं–'हृदय ही आत्मा है, हृदय परब्रह्म है ।'

इसीलिए मनुष्य को चाहिए कि जीवन द्वारा वह हृदय-सिद्धि के लिए कोशिश करे । यही सर्वोच्च साधना है ।

+★+

यज्ञ क्या ?

● श्री देवनारायण भारद्वाज

यज्ञ उन शुभ कर्मों की सामूहिक संज्ञा है जो परोपकारार्थ बिना बदले की भावना से किये जाते हैं। शास्त्रों में लाखों योनियों की कल्पना है। इनमें मनुष्य ही एक ऐसी योनि है, जो ईश्वर ने यज्ञ-कर्मों के निमित्त निर्मित की है। जहाँ यज्ञ-अग्निहोत्र का आयोजन होता है, उस स्थान को यज्ञशाला कहते हैं। मानव की देह इसीलिए यज्ञशाला है, क्योंकि वहाँ बैठकर जीवात्मा संसार के कल्याण कार्य करता है। चाणक्य नीति में कहा है—

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि,
चैतानि नृणां पशूनाम्।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो,
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥

भोजन-निद्रा-भय एवं मैथुन मनुष्य और पशुओं में समान हैं, मनुष्य में ज्ञान अधिक है और ज्ञान रहित मनुष्य पशु के समान है। यही ज्ञान मनुष्य देह को पवित्र यज्ञशाला बना देता है। भोजन-निद्रा-भय-मैथुन के किसी भी क्षेत्र में पशु केवल स्वार्थ में रत है—एक सीमा के बाद उनमें माता-पिता-भाई-बहिन की मर्यादाओं का रक्षण भी नहीं हो पाता है, किन्तु मनुष्य अपने विवेक बल से इन मर्यादाओं से भी आगे मानवता की समग्र अस्मिता को सुदृढ़ करता है। कोई भी महनीय यज्ञ उत्तमता से पूर्ण करने के लिए ऋग्वेद सात व्यक्तियों की आवश्यकता घोषित करता है

होताध्वर्यु रावया अग्निमिन्धो,
ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः।

(ऋ० १/१६२-५)

अर्थात् यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता अग्निमिन्ध, ग्रावस्तुत, प्रशास्ता और ब्रह्मा—ये सात ऋत्विज् होते हैं, जिनके कार्य तो पृथक्-पृथक् होते हैं, किन्तु उद्देश्य एक ही यज्ञ को सफलकाम करने का होता है। सृष्टि स्वयं प्रभु की उत्तम रचना है, जिसमें मानव उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। मानव में जो यज्ञ का भाव व्याप्त हुआ है, वह इस सृष्टि से ही गया है। सृष्टि में परमेश्वर के द्वारा सर्वदा एक होता रहता है; जिसे पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, विद्युत और चेतन-तत्व संचालित करते रहते हैं। पृथ्वी का गुण-गंध, वायु का स्पर्श, जल का रस, अग्नि का रूप, आकाश का शब्द, विद्युत-प्रकाश का ज्ञान और चेतनका गुण चिन्तन है। "यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे" के अनुसार सृष्टि के सातों यज्ञ-कर्ता मनुष्यके शरीर में सूक्ष्म रूप में स्थापित हो गये हैं।

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे,
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र,
जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥
(यजु० ३४/५५)

अर्थात् शरीर में सात ऋषि स्थापित हैं— सात है जो इस यज्ञशाला की प्रमाद रहित होकर रक्षा करते है। ये सात ज्ञान-प्रवाह सुषुप्तावस्था में अपने-अपने लोक में लीन हो जाते हैं; तब भी यज्ञ में बैठे रहने वाले और कभी न सोने वाले दो देव जागते रहते हैं। ये ऋषि है-—५ ज्ञानेन्द्रियाँ आंख, नाक, कान, वाणी, त्वचा, मन और बुद्धि। आंख देखकर, कान सुनकर, नाक सूंघकर, वाणी चखकर, त्वचा स्पर्श कर, मन मननकर और बुद्धि निश्चय कर देह में बैठी आत्मा के साथ यज्ञ करते रहते हैं। जागृत अवस्था में तो यह यज्ञ चलता ही रहता है, स्वप्नावस्था में भी यह यज्ञ बन्द नहीं होता और सुषुप्ति की दशा में जब ये ऋषि अपने-अपने लोक में लीन होकर नवीन स्फूर्ति प्राप्ति हेतु जाते हैं, तब भी प्राण और जीवात्मा इन दो देवों के द्वारा यह यज्ञ निरन्तर चलता रहता है। अपनी-अपनी बनावट के अनुरूप शरीर की प्राण-क्रिया खर्राटों के घोष से इन दोनों की उपस्थिति का संकेत करती रहती है।

विकट परिस्थितिवश महर्षि विश्वामित्र ने यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम और लक्ष्मण को नियुक्त किया था। प्राण-अपान-व्यान-समान-उदान-तप और सत्यरूपी सातों इस शरीर यज्ञशाला के प्रहरी हैं। सन्ध्या ब्रह्मयज्ञ में प्राणायाम के द्वारा सातों प्राणों के प्रेरक सात देवताओं का आह्वान—भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् के रूप में किया जाता है। किसी की रक्षा का प्रश्न तभी उठता है जबकि उसके शत्रु होते हैं। इस यज्ञशाला को भी सात शत्रुओं ने घेर रखा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार एवं अज्ञान ही यज्ञ ध्वंस करने वाले सात शत्रु हैं। वास्तव में जैसा कि पूर्व में लिखा है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, विद्युत एवं चेतना के प्रतिनिधि शरीर में नाक, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, मन, बुद्धि के आसन पर आकर बैठे हैं। इनका दुरुपयोग ही हमारी शत्रुता का कारण है।

फूल की गन्ध का लोभी भौंरा बन्दी बन जाता है। रस ग्राही मछली पानी के क्षणिक वियोग में प्राण त्याग देती है। स्पर्श, सुख, काम के आकर्षण में हथिनी-प्रतिमा के भ्रम में गजराज को पकड़ लिया जाता है। शब्द संगीत की स्वर लहरी को सुनाकर तेज दौड़ने वाला हिरण शिकारी की पकड़ में आ जाता है। रूप पर मुग्ध पतङ्गा-दर्शन की तपस में जल-भुनकर राख हो जाता है। विद्युत की कौंध क्षण में प्रकाश करती, फिर लुप्त होकर अन्धकार कर जाती है। ऐसे ही संशयात्मा विनष्ट हो जाता है। चेतन तत्त्व चिन्तन-मनन में सहायक है, पर बिना निश्चय या निर्णय पर पहुँचने वाला चिन्तन गिरगिट की भाँति रंग बदलता रहता है। निश्चय बुद्धि द्वारा होता है। न अनिश्चय ही ठीक है और बिना सोच-विचार के निश्चय कर लेना भी ठीक नहीं। केवल अपने ही हित का चिन्तन करना अति चालाक कौए की भाँति विष्ठा खानेके समान होता है। ऊपर बताये सात शत्रुओं से रक्षा के लिए सात प्राणों के संकलन का प्रयत्न किया जाता है।

वैदिक सन्ध्या के मार्जन-मन्त्रों में पांच ज्ञानेन्द्रियों, मन एवं बुद्धि को पवित्र रखने का विधान है। इस प्रकार सात शत्रु समाप्त

हो जाते हैं तो सात मित्र उनका स्थान ले लेते हैं। संयम, विनय, दान, शौच, प्रेम, धैर्य और ज्ञान ही सात मित्र हैं। इन सात मित्रों के सहयोग से मनुष्य को सात लाभ प्राप्त होते हैं—विद्या, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कीर्ति और सन्तोष। मानव शरीर रूपी यज्ञशाला का सात यज्ञोंके साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। प्रथम दो सृष्टि यज्ञ एवं पिण्ड-यज्ञ— इस यज्ञशाला की दृढ़ता के लिए हैं और शेष ५ यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृ-यज्ञ, अतिथि यज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ, उसके नित्य कर्म होते हैं। वेदोक्त विधि से मानव यदि भलीभांति इन यज्ञों को सम्पादित करेगा तो भारद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र जमदग्नि, अत्रि, गौतम तथा कश्यप—सात ऋषियों की भाँति वह अमरत्व प्राप्त कर सकेगा। अन्यथा अन्य योनियों की भाँति मानव योनि से भी आत्मा सदा पीड़ा पाता रहेगा।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।

यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है की परिभाषा को महर्षि दयानन्द ने विस्तृत आयाम प्रदान करते हुए कह दिया है कि सभी श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ हैं। अस्तु मानव-आत्मा अपने शरीर को उत्तम कर्मों के द्वारा यज्ञशाला का रूप देते हुए इस जीवन में सुख तथा दिवंगत होकर सद्गति व मुक्ति का पात्र बन सकता है।

भोग छोड़कर योग करो !

(चण्डीगढ़ में दिए गए पूज्य गुरुदेवजी के प्रवचन का कुछ अंश)

विगत सप्ताह चण्डीगढ़ में योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाँई के संचालक योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का योग प्रचार कार्यक्रम बड़ा लोकप्रिय हुआ। सेक्टर १५-डी में उनके योग-प्रचार शिविर में योग-प्रेमी साधकों की भारी भीड़ लगी रही। यह योग शिविर २८ अक्टूबर से ५ नवम्बर तक चला।

अपने प्रवचनों में श्री चन्द्रमोहन जी ने यही समझाने की कोशिश की कि योग ही ऐसा मार्ग है जिसे अपनाकर मनुष्य अपने जीवन को, सुखी, शांत एवं समुन्नत बना सकता है। योग द्वारा मनुष्य अपने अन्दर सुप्त रूप से विद्यमान दैवी शक्तियों को जाग्रत करके प्रकृति पर पूर्ण नियंत्रण पाने की सामर्थ्य पा सकता है। योग साधना से ही उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। योगाभ्यासी को ब्रह्माण्ड भर का ज्ञान स्वतः ही होने लग जाता है और वह भूत भविष्य का ज्ञाता बन जाता है।

महाराज श्री ने कहा कि मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। इसे भोग में नहीं योग में लगाना चाहिए।

महाराज ने कहा कि मनुष्य को २४ घण्टे में से कम से कम प्रातः २ घण्टे का समय योग-साधना के लिए अवश्य निकालना चाहिये। उन्होंने कहा कि यह कहना निराधार है कि गृहस्थ में योग-साधना नहीं हो सकती।

इस अवसर पर आपकी शिष्या डा० उमा शर्मा ने भी सिद्धयोगियों एवं योगिनियों की अद्भुत लीलाओं और उनके असीम योगैश्वर्य को अपने स्वरचित गीतों में सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

—बृजमोहन शर्मा

★ ★

साध्य और साधन

प्रत्येक मनुष्य, जिसे मनुष्यता का कुछ भी ज्ञान है, अपने जीवन का साध्य निर्धारित करता है और वह इस बात का प्रयत्न भी जीवन भर करने की चेष्टा करता है कि उसे येन-केन-प्रकारेण अपने निर्धारित साध्य की प्राप्ति हो। लेकिन देखने में यह आता है कि अपने निर्धारित जीवन साध्य को—चाहे वह भौतिक लाभ पर आधारित हो चाहे पारमार्थिक या आध्यात्मिक लाभ—प्रायः मनुष्य पाने से वंचित ही रहते हैं। 'कश्चित वेत्ति तत्वतः' के समान विरले ही वे भाग्यशाली होते हैं, जो अपने साध्य की उपलब्धि कर पाते हैं। जो नहीं कर पाते हैं, वे अपने भाग्य को दोष देकर सन्तोष कर लिया करते हैं। लेकिन वे इस बात का क्षण भर भी विचार नहीं करते कि उनका साध्य ऊंचा और पवित्रतम होते हुए भी क्यों उनकी पहुंच की सीमा से बाहर रह गया। यदि वे शान्ति और गम्भीरता से विचार करेंगे तो निश्चय ही इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि अपने ऊँचे और पवित्र साध्य को न पा सकने का कारण था केवल उनके साधनों की अपवित्रता और उनका दूषित होना। यह बात वेद और शास्त्रों में पुराणों और इतिहास के पृष्ठों में ऋषि मुनियों और महापुरुषों ने हमें स्पष्ट शब्दों में बतलाई है कि ऊँचे और पवित्र साध्य की उपलब्धि के लिए लिए तुम्हारे साधन भी ऊँचे और पवित्र होने चाहिए, दूषित अपूर्ण और अनमने साधनों से ऊँचा और पवित्र साध्य कभी प्राप्त ही नहीं किया जा सकता। अतः इस सत्य को पकड़ लेने की जरूरत है कि अपने जीवन साध्य की उपलब्धि के लिए तुम अपने साधनोंको भी पवित्र बनाओ। पवित्र साधन तुम्हें अपने मनकी पवित्रता से मिलेंगे। मन की पवित्रता तुम्हारे विचारों और आचरणों में पावनता लायेगी। जब विचार और आचरण तुम्हारे विशुद्ध और निर्मल होंगे तो तुम्हारे सच्चे साधन ही जिन्हें अपनाकर तुम अपने साध्य को पा सकोगे, पवित्रता से ओत-प्रोत होंगे, अशुद्ध और दूषित साधन जब तक तुम्हारे ऊँचे साध्यके आधार और सहयोगी रहेंगे तब तक साध्यफल तुमसे दूर ही रहेगा।

साधनों की पवित्रता के साथ-साथ साध्य को पा लेने के लिए दूसरे जिस गुण की आवश्यकता है वह है तुम्हारा अविचल, अनवरत प्रयास। यदि प्रयास अधूरा विशृङ्खल और अनमन रहेगा तब भी तुम अपने साध्य को कभी पा नहीं सकोगे। साध्य को पा लेने का उत्कट अभिलाषा और सुदृढ संकल्प शक्ति जब तक तुम्हारे भीतर नहीं होगी तब तक भी वह तुम्हें नहीं मिल सकेगा। मीरा, सूर, तुलसी, कबीर, दादू और चैतन्य, प्रताप, गांधी, तिलक और सुभाष सभी ने ही अपने साध्य को अपने पवित्र साधनों के साथ-साथ प्रयास भी अनवरत साधना के द्वारा ही पाया था। अतः इस तथ्य का भूलने जाने की जरूरत नहीं है कि ऊँचे और पवित्रतम जीवन साध्य की प्राप्ति के लिए तुम जब तक जगत में रहो, तब तक उच्चतम और पवित्रतम साधन तथा अनवरत श्रद्धामय प्रयत्नों का साथ न छोड़ो। इनका साथ ही तुम्हें तुम्हारे साध्य की प्राप्ति करा सकेगा।

—'दिव्य'

रमता जोगी बहता पानी

रमता जोगी, बहता पानी, दोनों की उद्घोषित वानी।
'चलने से जो रुक जाता है, कीचड़ बन जाता वह पानी'! —दिव्य

पुराकाल की बात है भारतवर्ष के किसी एक भूखण्ड पर अलर्क नामक एक राजा राज्य करते थे। बाण चलाने के कौशल में यह अपने काल के अद्वितीय योद्धा थे। इन्होंने अपने इस अद्वितीय कौशल का सहारा लेकर अनेक दूरवर्ती और समीपवर्ती राजाओं को परास्त करके उनके राज्यों के भूखण्ड का बहुत-सा भाग अपने राज्य की सीमाओंमें मिलाकर उसका अत्यधिक विस्तार कर डाला था। फिरभी राजा अलर्क को अपने भौतिक राज्य विस्तार से न तो सन्तोष प्राप्त हो रहा था, न शान्ति।

× × ×

एक दिन सहसा उसके मन में पहले कभी सुना हुआ किसी सन्त का यह उपदेश आकर स्फुरित हो गया कि संसार विजयी की पदवी उसी को मिला करती है जो बाहरी शत्रुओं को नहीं किन्तु अपने आन्तरिक शत्रुओं को जीत लिया करता है। अतः अलर्क अब प्रायः इसी उधेड़-बुन में लगा रहने लगा कि अपने आन्तरिक शत्रु मन, बुद्धि और कामनाओं की विषय भूमि की ओर दौड़ लगाने वाली अन्य इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को किस प्रकार परास्त किया जाय।

× × ×

अन्त में वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि मन ही सब इन्द्रियों का अगुआ बनकर उनको अपना अनुगामी बना लेता है इसलिए पहला मोरचा इसीको परास्त करने के लिए बनाना चाहिये।

× × ×

उसने अपने इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए अपनी आयुधशाला में विशेष प्रकार के वाण तैयार कराये। इन्हें अपने तरकश में भरकर राजा ने सबसे पहले मन को ललकारा और उसीको लक्ष्य बनाकर सारा तरकश खाली कर डाला, पर मन का बाल भी बांका न हो सका। राजा अपना खाली तरकश एक ओर फेंककर जब दूसरा तरकश उठाकर पीठ पर कसने लगा तभी मन सामने आया और खिलखिलाकर हँसने लगा। राजा अलर्क को सम्बोधित करके वह कहने लगा—राजन् क्यों मूर्खों के समान मुझे मारने का प्रयास कर रहे हो। मन का यह उपदेश सुनकर राजा चारों ओर देखने लगा किन्तु आवाज सुनाई देने के अतिरिक्त मन का कोई रूप या आकार-प्रकार उसे कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ रहा था।

× × ×

राजा आश्चर्य चकित होकर चारों ओर देखने पर भी किसी का अता-पता न पा सका। हैरान होकर उसने फिर ललकारा और कहा तुम कहाँ छिपे हो कहाँ से बोल रहे हो, सामने क्यों नहीं आते?

× × ×

राजा ने प्रतिउत्तर में फिर यह सुना—मैं तुम्हारे सामने हूँ, बिल्कुल तुम से सटा हुआ खड़ा हूँ। पर तुम मुझे देख नहीं सकते क्योंकि मैं अरूप हूँ। मुझे तुम मार नहीं सकते हो। मेरा नाम मन है। मैं तुम्हारा मर्म स्थान हूँ। यदि मुझ मर्म स्थान रूपी मन को किसी प्रकार तुम मार भी डालोगे तो तुम स्वयं भी मर जाओगे। मन के जीवित रहने पर ही प्राणी जीवित रहता है और मन के मर जाने पर वह स्वयं मर जाया करता है।

× × ×

राजा अलर्क की समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस प्रकार अपने इस अदृश्य, अरूप प्रतिपक्षी को मारकर अपने व्रत को पूरा करे। उसने सोचा मन को नहीं तो बुद्धि का वध करूँ। बुद्धि की ओर जब उसने वाण फेंकने शुरू किये तो उसने भी मन का अनुसरण कर वही सब कुछ कहा जो मन ने कहा था। बुद्धि बोली राजन् मैं तुम्हारा मर्म स्थानीय देवता हूँ! बुद्धि नष्ट हो जाने पर मनुष्य का सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतिशय सूक्ष्म होने के कारण तुम मुझे देख नहीं सकते और जब देख ही नहीं सकोगे तो मुझे मार भी कैसे सकोगे ?

× × ×

राजा बुद्धि के इस उत्तर को सुनकर सोचने लगा कि अगर मन और बुद्धि मेरी पकड़ में नहीं आ रहे हैं तो क्यों नहीं पंच इन्द्रियों की तन्मात्राओं का वध कर दिया जाय, जो कि आध्यात्मिक राज्य की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा बनी रहती हैं। लेकिन राजा हतप्रभ और निराश होकर रह गया जब समूह रूप से पंच तन्मात्राओं ने भी ये वही बातें दुहरायीं जो मन और बुद्धि ने कही थीं। वे सब समवेत स्वर में कहने लगीं 'राजन् हम सभी अरूप और सूक्ष्मतम हैं तुम हमें न देख सकते हो न मार सकते हो। फिर हम सभी तुम्हारे मर्म हैं। हमारा वध तुम्हारा ही वध होगा इसलिए हम में से किसी को भी मारने और अपने वशवर्ती करने का विचार छोड़ दो।

× × ×

राजा परेशान और निराश होकर जब अपने स्थान को लौटने लगा तभी मार्ग में एक परम सिद्ध योगी संयोगवश उधर आ निकले। राजा को हताश और निष्प्रभ देखकर उसका कारण जानना चाहा तो राजा ने अपनी परेशानी का सही-सही कारण बता दिया। 'सिद्धयोगी' ने कहा राजन् आध्यात्मिक राज्य के विस्तार की, उसका आनन्द प्राप्त करनेकी तुम्हारी इच्छा तो सराहनीय है किन्तु जिस प्रकार अथवा उपाय का आश्रय लेकर तुम इन सूक्ष्मतर तत्वों को वशवर्ती बनाना चाहते हो वह उपयुक्त नहीं है। इनको अपने अधीन बना लेने का एकमात्र उपाय है योग-साधन। योग-साधना करके तुम अपने को समर्थ और क्षमतावान बनाने का प्रयत्न कर लोगे तो निश्चित रूप से मन, बुद्धि और पंच तन्मात्राओं जैसे सूक्ष्म तत्वों को पकड़कर अपने वश में कर लोगे। इनका वशवर्ती हो जाना ही तुम्हारे जीवन की सार्थकता कहलायेगी। राजा यह सलाह मानकर वहीं ध्यानस्थ होकर बैठ गया और कुछ समय बाद योग-साधना की शक्ति से सभी इन्द्रियों को वशवर्ती बना लिया।

● श्री सुखदेव अरोरा, जिला एवं सैशन जज

वे सिद्धपीठ बना गये सवाँई-आश्रम को

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जो मेरे सद्गुरुदेव थे के ब्रह्मीभूत हो जानेसे सनातन जगत को एक अपूतिनीय क्षति हुई है। महाराज श्री सरल चित्त मृदु भाषी, उदार-प्रकृति और दया की मूर्ति थे। आपका जीवन सात्विक यज्ञमय था, गो-सेवा तथा भगवन्नाम की महिमा का सदैव गुणगान आपके होठों पर रहा। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग का समन्वय जो असली गीता तत्त्व चिन्तन है आप में देखने को मिला। भारतीय, शास्त्रों, विशेष कर 'गीता', 'पतंजलि योग-दर्शन' के उद्भट विद्वान् थे, और निरन्तर अपने अकिंचन बालकों को इनपर सम्बोधित करते रहते थे। निरन्तर आपके आशीर्वाद और सन्देश 'सिद्धयोग' पत्रिका के माध्यम से जनता जनार्दन और विशेषकर आपके बच्चों (दीक्षितबच्चों) को प्राप्त होते रहते थे। आप त्रिकाल दर्शी, अप्रतिहत गति और अतीव सामर्थ्यवान थे। कितनों को आपने दिव्य दृष्टि दी-अपनी अलौकिक सामर्थ्य का परिचय अपने बच्चों को आप समय-समय पर देते रहे। भिन्न-भिन्न लोकों में उनको ध्यान में ले जाते परन्तु आप अपनी समर्थता को छिपा कर प्रभुजी का नाम ले देते थे कि उन्होंने यह किया।

ब्रह्मलीन परम पूज्य मेरे गुरुदेव को श्रद्धा के सुमन यह अकिंचन बालक क्या भेंट कर सकता है सिवाय इसके कि प्रभुजी आपके शरीरमें स्वयं कार्य करते रहे। उनमें और आप में कोई भेद नहीं। आपके कार्य प्रभुजी की तरह अनुकरणीय तथा संसार की भलाई करने के लिए ही होते थे। आपका स्वभाव अति कोमल, सरल था। क्षमा, दया, शान्ति, समता, सन्तोष, सरलता, ज्ञान, वैराग्य, प्रेम आदि दिव्य गुणोंसे आप परिपूर्ण थे। इतने उच्चकोटि के महापुरुष होकर भी आप अपने बालकों का अपने समान ही अधिकार मानते रहे। आध्यात्मिक उन्नति और मनुष्य जीवन को सफल बनाने वाले सत्साहित्य का 'सिद्धयोग' व अन्य यौगिक पुस्तकों द्वारा घर-घर प्रचार-प्रसार किया। नित्यलीलालीन श्रद्धेय श्री गुरुदेव भगवान आधिदैविक जगत के मालिक, दिव्य व्यक्तित्व (Divine Personality) के धनी थे। आप निर्मल विचारधारा वाले हर समय 'गीता ज्ञान' में ही लीन रहा करते थे। आप सद्व्यवहार, त्याग वृत्ति, नैतिकता, उपकारक मनोवृत्ति, आत्मानुशासनपूर्वक आन्तरिक वातावरण में रहने वाले, विवेकी और सत्यभाषी थे। कभी मिथ्या भाषण नहीं किया। विनोद में भी नहीं। आप दुष्ट आत्मा को भी न केवल क्षमा कर देते थे बल्कि उनकी रक्षा और दीन-दुखिया पर दया करते रहे। वास्तव में दीन-दुखियों की आर्त पुकार सुनकर ही आपने यह योग अवतार लिया। आप गीता-तत्त्व चिन्तन में सदैव लीन रहने वाले श्रद्धा, विश्वास की साक्षात् मूर्ति थे। जहाँ पर भी आपने चरण डाले वह धरा को

टुकड़ा पवित्र तथा धन्य हो गया। यहाँ तक कि आपके पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार करते समय माँ गंगा ने स्वयं आगे बढ़कर आपके दो बार चरण स्पर्श किए, वन्दना की नीलधारा के तट पर हरिद्वार में।

आप जन्म जात सिद्ध महापुरुष थे, सब प्रकार के स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् की सिद्धियों से युक्त तथा धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य आदि श्रेष्ठ गुणों से पूर्णतया सम्पन्न थे, आप प्राय: सिद्ध लोक में अदृश्य ही रहते हैं किन्तु आवश्यकतानुसार स्थूल शरीर भी धारण कर लेते। दीन-दुखियों के कष्ट निवारण के लिए ही आए, करीब पचास वर्ष तक श्री सिद्धगुफा सवाँई आश्रम में। यह एक ऐसी सिद्धपीठ है जिसके समानान्तर इस विश्व में और कोई सिद्धपीठ नहीं है-केवल एक है जो सिद्धलोक में है जो महाप्रभो सदाशिव की है यहाँ विराजते हैं और दीन-दुखियों की आर्त पुकार सुनकर उनके तीनों प्रकार के दु:खों को हरते रहे। जितना योग-प्रचार महाप्रभु जी ने आपके माध्यम से कराया, शायद इतना और किसी के द्वारा न कराया। आपने अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए योग-प्रचार जारी रखा और अपने गुरु के वचनों का अक्षरश: पालन किया। आप योगियों के ईश्वरवाद तथा ईश्वर होते हुए भी अपने आपको छिपाए रखा—समुद्र पीकर भी होंठ सूखे रखे ताकि किसी को आपके योगावतार होने का आभास न हो और जिनके संस्कारी जीवन थे वे ही श्री चरणों में आ सके।

आत्मा के अजर-अमर और शाश्वत होने के कारण और वैसे भी सिद्धयोगी जन्म जात होने के कारण यद्यपि महाराज श्री आज भी हमारे बीच समुपस्थित हैं, पर इस पाँच भौतिक शरीर के तिरोधान होने से हम सभी आपके सानिध्य से वंचित हो गए हैं। प्रभो! लेख को समाप्त करने से पूर्व वह आपका वचन रह-रहकर याद आता है कि हम अकिंचन बालक आप की आत्मा के टुकड़े हैं और एक बार जो श्री चरण-शरण में आ गया, वह अलग नहीं हो सका, प्रभुजी सदैव उसकी रक्षा करते हैं और अन्त में एक दिन वह निश्चित रूपसे मोक्ष प्राप्तकर लेगा।

सत्त्वगुण बढ़ाइए!

उद्धव को सम्बोधित करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहने लगे:—

सत्त्व रज और तम तीनों बुद्धि यानी प्रकृति के गुण हैं, आत्मा के नहीं। सत्त्व के द्वारा रज और तम—इन दो गुणों पर विजय प्राप्त कर लेनी चाहिए। तदनन्तर सत्त्वगुण की शान्ति वृत्ति के द्वारा उसकी दया आदि वृत्तियों को भी शान्त कर देना चाहिए। जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, तभी जीव को मेरे भक्तिरूप स्वधर्म की प्राप्ति होती है। निरन्तर सात्विक वस्तुओं का सेवन करने से ही सत्त्वगुण की वृद्धि होती है और तब मेरे भक्तिरूप स्वधर्म में प्रवृत्ति होने लगती है।

—भागवतपुराण

● ब्रह्मचारी धीरेन्द्रस्वरूप

श्री सद्गुरुदेव के चरणों में

यह मेरे किसी पूर्व-जन्म कृत-कर्म का सुफल ही रहा जो मुझे श्रीसिद्ध गुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई धाम में आकर पूज्यवर श्री सद्गुरुदेवजी की सेवा में रहने का सुयोग प्राप्त हुआ।

यहाँ आकर उपयुक्त अवसर पर दीक्षा ग्रहण की तथा नियमित अभ्यास योग का आश्रय लेकर श्री सद्गुरुदेवजी के प्यार भरे निर्देशन में ही मैंने आसन, प्राणायाम और मुद्रायें सीखीं तथा जप-ध्यान आदि के अनुष्ठान की विधियों का भी क्रियात्मक शिक्षण प्राप्त किया। इन सभी का अभ्यास पूज्यपाद श्री गुरुदेवजी स्वयं अपने बच्चोंको अपने निर्देशन और उपस्थिति में कराया करते थे। उनकी उपस्थिति और कृपा-दृष्टि का आधार पाकर कठिन से कठिन यौगिक-क्रियायें सरलता और सहजता से सम्पन्न हो जाया करती थी। उनका सभी बच्चों पर समान स्नेह और प्यार निरन्तर बना रहता था। किसी भी त्रुटि या भूलका सुधार किसी आवेश में नहीं, किन्तु सहज मुस्कराहट के साथ बड़े विनोदपूर्ण ढंग से कर दिया करते थे। सदा प्रसन्नमना रहना और दूसरों को भी आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव करा देना उनके वार्तालाप की शैलीकी अपनी विशेषता थी। वे प्रेम, दया, करुणा और क्षमा तथा संयम और ब्रह्मचर्य की साधना पर सदा बल दिया करते थे और कहा करते थे, बिना इन्द्रिय संयम के तप की प्राप्ति नहीं होती और तप बिना ब्रह्मचर्य सफल नहीं होता। इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन ही, न केवल ब्रह्मचारी साधकों को बल्कि घर-गृहस्थी में रहने वाले साधकों को भी पालन करना जरूरी होता है। वे यह भी प्रायः समझाया करते थे कि योगके यम-नियमों की उपेक्षा करने वालों को योग सिद्ध नहीं हुआ करता। इसलिए यम और नियमों का प्रतिपालन भी कड़ाई से होना चाहिए। सबका कल्याण करने की भावना को क्रियात्मक रूप देने का सदा प्रयास किया करते थे। वे योग-ऐश्वर्यों के कोष थे और अपने इस कोष को मुक्त-हस्त होकर वे अवढर दानी शिव की भांति सदा खले रूप में लुटाया करते थे। अपने सम्पर्क में आने वाले जीवों के जीवन को दैवी-गुणों से परिपूर्ण बनाने के सद्-प्रयासों में ही लगे रहते थे। उनके दिव्य स्वरूप में जो आकर्षण और तेजपुंज समाया हुआ था, उसको तथा उसके असीम सद्गुणों का वर्णन इस छोटे से लेख में कर सकना सम्भव नहीं है और न उनकी अलौकिक लीलाओं को भी साधारण बुद्धि तो समझ पाना सम्भव है। श्रुतियों में कहा है—

सद्गुरु रूप तुम्हार,
    वचन अगोचर बुद्धि या।
अविगत अकथ अपार,
    नेति नेति नित निगम कह ।।

सभी योग-प्रेमी गुरु-भाई-बहनों को यह जानकर हार्दिक संवेदना होगी कि हमारे परम पूज्य श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय क्षण-क्षण वन्दनीय योग-योगेश्वर अनन्त सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहनजी महाराज अपने पञ्च-भौतिक शरीर से अब इस दृश्यमान जगत में नहीं रहे।

मैं प्रभुजी की आज्ञा लेकर गुजरात प्रान्त में कई वर्षों से रहता हूँ। गुरुदेवजी की आज्ञानुसार पत्र-व्यवहार भी करता रहता था। कुछ पूर्वकाल से मेरे मन के अन्दर ऐसे विचार आया करते थे कि इस वर्ष गुरु-पूर्णिमा सवाई आश्रम में ही करूँगा। गुरु-पूर्णिमा पर वहाँ पहुँचने की लालसा में सभी कार्यक्रम बदल दिये। इस दुःखद घटना का मुझे एक अद्भुत प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। दि० २५-२६ जून की रात्रि में ब्रह्ममुहूर्त के समय स्वप्नवत् अवस्था में श्री सद्गुरुदेवजी का स्मरण कर रहा था, स्मरण करते ही मुझे आवाज सुनाई दी। मैं सुन रहा था कि सद्-गुरुदेवजी इस पंच-भौतिक शरीरको छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये हैं। उसके तुरन्त बाद ही आसन से उठकर बैठ गया, मुझे ऐसा लगा मानो मेरे प्राण अब निकल गये। मैं घबरा कर अचेत-सा हो गया, जैसे मेरे शरीर में शक्ति नहीं रही। मैंने अपने को सम्हालने की बहुत कोशिश की, बहुत देर बाद मुझे चेतना आई, फिरभी मेरा मन व्याकुल होकर किसी अगाध शोक-सागर में डूब रहा है। बार-बार विचारों के बाद धैर्य रखकर कि स्वप्न में कभी ऐसा हो नहीं सकता। मैंने अपने मन को समझाया, मन मेरी इस घटना को सत्य नहीं मान रहा था। इसके बाद मुझे १० दिन बाद श्री सिद्धयोग कार्यालय द्वारा छपा हुआ पोस्ट-कार्ड प्राप्त हुआ, जब मैंने वह पढ़ा तो मेरे मन में बहुत दुःख हुआ। मेरी स्वप्न की बात बिल्कुल सत्य रही। मैं वहाँसे दूसरे दिन आश्रम के लिए रवाना हो गया, क्योंकि ता० ७-७-६० को परमपूज्य गुरुदेवजी का महा-भंडारा था। मेरा दुर्भाग्य रहा कि गुरुदेवजी के श्रीकमल-चरणों का अन्तिम दर्शन नहीं कर सका। समयाभाव के कारण प्रभुजी के भंडारे में शामिल नहीं हो पाया। यहाँ आने पर पता चला कि हम सबके लिए २५ जून का दिवस काल-रात्रि बनकर आया था। हमारे प्राण प्यारे आराध्य सद्गुरुदेवजी को हम सबसे सदा के लिए छीन लिया गया, क्षणिक सी उदर-वेदना ही हम सबसे स्थायी रूप में अलग कर देनेका कारण बन गई। योगविधि द्वारा सद्गुरुदेव अपने इस भौतिक शरीर का परित्याग करके उस अमरलोक के वासी बन गये, जिसे सर्वशास्त्रों में दिव्यलोक की संज्ञा दी गई है या जिसे महाप्रभुजी का परमधाम बताया गया है। जहाँ जाकर परम पुण्य दिव्यात्माओं का इस भूतल पर पुनरागमन नहीं होता!

योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र जी ने गीता में उस परमधाम का वर्णन किया है—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' यह उनका अपना परमधाम है। जो परमसिद्ध महायोगी इसी धाम को पा लिया करते हैं। बस, अब हम सबके लिए मात्र एक ही विकल्प आधार-रह गया। परमपूज्य श्रद्धेय सद्गुरुदेवजी का विशुद्ध कर्मठ और निर्मल आदर्श जीवन जो सूर्यके समान प्राणवान रहकर हमें सदा सर्वदा दिव्य योग-मार्ग पर आगे बढ़नेकी प्रेरणा देता रहेगा। उनके पावन दिव्य संदेश के अनुसार चलकर हम सब अपने जीवनको कृतार्थ करते हैं। लोक-कल्याण के कार्योंको ध्यान में रखते हुए उनके पावन योग-सन्देश को जन-मानस तक पहुँचाएँ। श्री सिद्धगुफा आश्रम के इस परम पावन योगरूपी दीपक को सदा सर्वदा प्राज्वलित और अखंड रखें। हमारा सबका यह परम पावन कर्तव्य हो जाय। शेष रह गया है जिसे हमें पूरा करना है।

—××—

हमारे गुरुदेव अवतारी पुरुष थे

हम पठानकोट जि० गुरदासपुर (पंजाब) के सभी गुरुजी के बालक बड़े दुःखित हृदय से श्री-श्री १००८ श्री चन्द्रमोहनजी महाराज भक्त-वत्सल, सर्व समर्थ सद्गुरुदेवजी महाराज की पुण्य स्मृतिमें अपने पूजनीय सद्गुरुदेव भगवान के पवित्र चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

हम सचमुच धोखा खा गये, अपने कृष्ण अवतार सद्गुरु भगवानजी को न पहचान सके। आज हम वृन्दावन की गोप-गोपियों की तरह बेसहारा और अनाथ होकर रह गये हैं। हम लोग आज तक अपने सद्गुरु भगवान से सांसारिक सुखों को ही मांगकर आनन्दित होते रहे। गुरुजी के बार-बार जगाने पर भी मोह-माया के गर्त में ही डूबे रहे। जबकि हमारे सद्गुरुदेव कर्त्तुम-अकर्त्तुम की शक्ति वाले थे। वे परवरदिगार अब हमें नहीं मिल सकते।

जैसे अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण का विराट रूप देखने से पहले एक सखा (मनुष्य-मित्र) ही माना। हमने भी अपने मुक्तिदाता सद्गुरु भगवान को केवल मात्र एक सिद्ध पुरुष ही माना, परन्तु हमारी भूल का पर्दाफाश करके हमारी आँखें खोल दीं और यह सिद्ध कर दिया कि तीन बार उनके पार्थिव देह में हमें स्पर्श करके वन्दनीय श्री गंगा-माता जी ने यह कि हमारे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज भगवान के अवतार थे।

हमारे गुरुदेव योगी रूप में केवल जगत का कल्याण करने आये थे। मेरे भजन की यह कड़ी सत्य निकली—

"आये जो जग तारन को योगी का है रूप धरा।"

सो हमारे सद्गुरुदेवजी इस अन्धकार में हमें बचाने और धर्म की संस्थापना करने ही आये थे।

हमारे गुरुदेवजी पुण्य प्रसाद दिया करते थे। मैंने गुरुजी से कहा—

"देश विदेश में शोर मचा हिन्द में बाबा अनोखा है,
देता पुण्य प्रसाद जिसे काम उसी का होता है।
मन मोहन है वह तो सबका रहता सबाईं के धाम॥
प्रभुजी मैं हार गया!"

ऐसे अनोखे योगी थे मेरे गुरुदेव महाराज! परन्तु आज हम सभी अनाथ होकर रह गये हैं। ऐसे मेरे सद्गुरु भगवान को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम है।

माँ गंगा की तरंग-मालायें एक बार नहीं, तीन बार उन्हें अवगाहन कराने अस्वाभाविक गति से आगे आईं।● शोकाकुल :-

गुरु भाई-बहिन (पठानकोट)

यदि पल भर को तुम आ जाते !

● श्री नन्दकिशोर "श्याम"

मेरे उर के निभृत-कुंज में,
यदि पल भर को तुम आ जाते।

युगों युगों से यहाँ निशा का,
छाया है सुनसान अंधेरा।
जाने कौन बाट से जाता,
भूल इधर को सुखद सवेरा।
खिल जातीं साधों की कलियाँ,
श्वासों का मलयानिल चलता।
मेरे चन्द्र ! अगर मधु-सिंचित,
उज्ज्वल किरनों को बरसाते।

भटका हुआ पथिक है प्रभु, पर
तेरा ही मैं गंगा-जल हूँ।
पारिजात ! मैं बिछुड़ गया हूँ,
पर तेरा ही मैं परिमल हूँ।
तुम को पाने के प्रयत्न सब,
व्यर्थ हो चुके बारी बारी।
तम में फँसी किरन को अपनी,
यदि प्रभु बाँह पकड़ अपनाते।

भ्रमित और पीड़ित हूँ इतना,
स्मृति मिट गयी अपनेपन की।
जिह्वा कहती हमीं ब्रह्म पर,
जकड़ न जाती है बन्धन की।
कर्म-करों से बुनी जाल जो,
वह इतनी दुर्वेद्य बन गयी।
अपनी ही निर्मित कारा से,
हन्त ! आज हम छूट न पाते।

मोड़ मोह माया का बन्धन,
नाता प्रभु से जोड़ न पाया।
अपना तो क्या प्रभु का पथ मैं,
निज कुटिया तक मोड़ न पाया।

पर शरणागत मैं अपात्रता,
प्रभु ने कब किसकी पहिचानी।
सुना अनाथ नाथ जन-वत्सल,
तुम हो अशरण शरण कहाते।
किसी अहेरी के बाणों का,
बिधा हुआ मैं तो मराल हूँ।
गौतम आज कहाँ प्राणेश्वर,
पड़ा हुआ मैं अति बिहाल हूँ।

तुम सा और कौन करुणेश्वर,
द्रवित हो सके जो दुर्गति पर।
यदि इन क्षत्-विक्षत् अंगों पर,
प्रभु के कर-पल्लव पड़ जाते।
तेरी अहैतुकी करुणा ने,
पापी कितने पार कर दिये।
कितने दीन अकिंचन जन के,
प्रभु तुमने भण्डार भर दिये।

छूट गया अपवाद क्रम में,
एक यही प्रभु "श्याम" अभागा।
पावन पवन विरद में प्रभु के,
प्रश्न-चिह्न से हमीं दिखाते।
शक्ति और सामर्थ्य-हीन मैं,
प्रभु वर तुम तक आऊँ कैसे।
वैसाखी का लिये सहारा,
भव-वारिधि तर पाऊँ कैसे।

स्मृति से तेरी हुआ न पागल,
ऐसा तो पाषण हृदय हूँ !
कर कालुष्य हरण इस उर को,
यदि प्रभु निज आवास बनाते।

★

गौवंश का महत्व

—श्री दर्शनानन्द

राजा युधिष्ठिर को पितामह भीष्म ने गोवंश के और गौवंश के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एक बार बताया—

राजन् ! गौएँ महान् प्रयोजन सिद्ध करने वाली तथा परम पवित्र हैं। ये मनुष्यों को तारने वाली हैं और अपने दूध-घी से प्रजा-वर्ग के जीवन की रक्षा करती हैं।

गौओं से बढ़कर परम पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। ये पुण्यजनक, पवित्र तथा तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

गौएँ देवताओं से भी ऊपर के लोकों में निवास करती हैं। जो मनीषी पुरुष इनका दान करते हैं, वे अपने आपको तारते हैं और स्वर्ग में जाते हैं।

इस विषय में मैं तुम्हें एक पुराना वृत्तान्त सुना रहा हूँ। एक समय की बात है, परम बुद्धिमान शुकदेवजी ने नित्य कर्म का अनुष्ठान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त होकर अपने पिता—ऋषियों में श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास को, जो लोक के भूत और भविष्य को प्रत्यक्ष देखने वाले हैं, प्रणाम करके पूछा—पिताजी ! सम्पूर्ण यज्ञों में कौनसा यज्ञ सबसे श्रेष्ठ देखा जाता है ?

गौएँ सम्पूर्ण भूतों की प्रतिष्ठा हैं। गौएँ परम आश्रय हैं। गौएँ पुण्यमयी एवं पवित्र होती हैं तथा गोधन सबको पवित्र करने वाला है।

गोलोक के सभी वृक्ष मधुर एवं सुस्वादु फल देने वाले हैं। वे दिव्य फल-फूलों से सम्पन्न होते हैं। उन वृक्षों के पुष्प दिव्य एवं मनोहर गन्ध से युक्त होते हैं।

वहाँ की भूमि मणिमयी है। वहाँ की वालुका कांचन-चूर्ण रूप है। उस भूमि का स्पर्श सभी ऋतुओं में सुखद होता है। वहाँ धूल और कीचड़ का नाम भी नहीं है। वह भूमि सर्वथा मंगलमयी है।

वहाँ की भूमि कितने सरोवरों से शोभा पाती है। उन सरोवरों में नीलोत्पल मिश्रित बहुत से कमल खिले रहते हैं। उन कमलों के दल बहुमूल्य मणिमय होते हैं और उनके केसर अपनी स्वर्णमयी प्रभा से प्रकाशित होते हैं।

उस लोक में बहुत-सी नदियाँ हैं, जिनके तटोंपर खिले हुए कनेरोंके वन तथा विकसित सतानक (कल्प-वृक्ष विशेष) के वन एवं अन्यान्य वृक्ष उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे वृक्ष और वन अपने मूल भाग में सहस्रों आवर्तों से घिरे हुए हैं।

जो पुरुष गौओं की सेवा और सब प्रकार से उनका अनुगमन करता है, उस पर संतुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं।

गौओं के साथ मन से भी कभी द्रोह न करें, उन्हें सदा सुख पहुंचायें, उनका यथोचित सत्कार करें और नमस्कार आदि के द्वारा उनका पूजन करता रहे।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय और प्रसन्न चित्त होकर नित्य गौओं की सेवा करता है, वह समृद्धि का भागी होता है। मनुष्य तीन दिन तक गरम गोमूत्र पीकर रहे, फिर तीन दिन तक गरम गोदुग्ध पीकर रहे।

गरम गोदुग्ध पीने के पश्चात तीन दिन तक गरम-गरम गोघृत पीयें। तीन दिन तक गरम घी पीकर फिर तीन दिन तक वह वायु पीकर रहें।

देवगण भी जिस पवित्र घृत के प्रभाव से उत्तम-उत्तम लोक का पालन करते हैं तथा जो पवित्र वस्तुओं में सबसे बढ़कर पवित्र है, उससे घृत को शिरोधार्य करें।

गाय के घी के द्वारा अग्नि में आहुति दें। घृत की दक्षिणा देकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन करायें। घृत भोजन करें तथा गोघृत का ही दान करें। ऐसा करनेसे मनुष्य गौओंकी समृद्धि एवं अपनी पुष्टि का अनुभव करता है।

गौएँ परम पावन, पवित्र और पुण्यस्वरूपा हैं। वे महान् देवता हैं। उन्हें ब्राह्मणों को देकर मनुष्य स्वर्ग का सुख भोगता है।

पवित्र जलसे आचमन करके पवित्र होकर गौओंके बीचमें गोमती-मन्त्र (गोमाँ अग्नेविमाँ अश्वि इत्यादि) का मन ही मन जप करे। ऐसा करने से वह अत्यन्त शुद्ध एवं निर्मल (पाप-मुक्त) हो जाता है।

विद्या और वेदव्रत में निष्णात पुण्यात्मा ब्राह्मणों को चाहिए कि वे अग्नि और गौओं के बीच में तथा ब्राह्मणों की सभा में शिष्यों को यज्ञ-तुल्य गोमती विद्या की शिक्षा दें। जो तीन रात तक उपवास करके गोमती-मन्त्र का जाप करता है, उसे गौओंका वरदान प्राप्त होता है।

पुत्र की इच्छा वाला पुत्र और धन चाहने वाला धन पाता है। पति की इच्छा रखने वाली स्त्री को मन के अनुकूल पति मिलता है। सारांश यह है कि गौओं की आराधना करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। गाएँ मनुष्यों द्वारा सेवित और सन्तुष्ट होकर उन्हें सब कुछ देती हैं, इसमें संशय नहीं है।

इस प्रकार वे महाभाग्यशालिनी गौएँ यज्ञ का प्रधान अङ्ग हैं और सबको सम्पूर्ण कामनायें देने वाली हैं। तुम इन्हें रोहिणी समझो। इनसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है।

—: आवश्यक निवेदन :—

पूज्यपाद गुरुदेवजी के नाम से अनेक श्रद्धालु भाई-बहिन जो धन मनीआर्डर अथवा रजिस्टर्ड डाक से भेजा करते थे, उसे वे अब उनके नाम से न भेजकर व्यवस्थापक "श्री सिद्धगुफा" योग-प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा) के पते पर भेजने की कृपा करें तथा 'सिद्धयोग' पत्रिकाका मूल्य पूर्ववत् व्यवस्थापक 'सिद्धयोग' कार्यालय, सवाई आश्रम (आगरा) के पते पर ही भेजते रहें।

'सिद्धयोग' मासिक पत्र योग-मार्ग का पथ-प्रदर्शन करने वाला हिन्दी का एक मात्र मासिक पत्र है जो पूज्य गुरुदेवजी द्वारा अब से २३ वर्ष पूर्व निकाला गया। गुरुदेव जी की स्मृति स्वरूप इसका प्रकाशन निरन्तर होता रहेगा। सभी भाई-बहिनों से निवेदन है कि अपने-अपने क्षेत्र में इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाकर गुरुदेवजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें।

—सत्येन्द्र शर्मा, मुख्य व्यवस्थापक

श्रद्धेय गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

बीना (मध्य प्रदेश) में

अपने प्रिय शिष्य

श्री विष्णुप्रसादजी व्यास एवम् **श्रीमती व्यास**

को उनके आवास पर आशीर्वाद प्रदान करते हुए।

एक कापी ।)

PRINTED MATTER
Book-Post

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर)
आगरा ।

श्री 925
सुरेन्द्र कुमार त्रिपाठी
श्री एम. डी. दण्डोतिया सरकारी वकील
का मकान गणेशपुरा मुरैना म. प्र.

कर्म और विकर्म

कर्म के साथ जब आन्तरिक भाव का मेल हो जाता है तो वह कर्म कुछ निराला ही हो जाता है। तेल और बत्ती के साथ जब ज्योति का मेल होता है तब प्रकाश उत्पन्न होता है। कर्म के साथ विकर्म का मेल होने पर निष्कामता आती है। बारूद में बत्ती लगाने से धड़ाका होता है उस बारूद में एक शक्ति उत्पन्न होती है। कर्म को बन्दूक की बारूद समझो, उसमें विकर्म की बत्ती लगी कि काम हुआ। जब तक विकर्म आकर नहीं मिलता, तब तक वह कर्म ही बना रहता है।

—योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

मुद्रक–देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कमर्शल प्रिंटिंग प्रेस, नमक मण्डी ताजगंज, आगरा । Ph. 6